उसका साहित्य शाश्वत अथवा स्थायी बनेगा। उदाहरणार्थ आज के हिन्दी लेखक के सम्मुख एक समस्या यह है कि वह हिन्दू मुसलमानों के सम्बन्ध के विषय में अपना क्या मत दे? वह हिन्दुओं में वैमनस्य भावना भरकर उन्हें उत्तेजित करने की चेष्टा करे और सस्ती वाहवाही पाए या ऐसे साहित्य का सृजन करे जो हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य की भावनाओं को जाग्रत् करनेवाला हो। कोई भी समझदार व्यक्ति उसे प्रथम मार्ग ग्रहण करने की सम्मति न देगा। अपने देश के नेता भी ऐसी साहित्य-रचना का बराबर विरोध कर रहे हैं। इस प्रकार के वैमनस्य-प्रचार करनेवाले साहित्य की रचना करना देश-द्रोह ही नहीं मानव-द्रोह भी है। मानव की बड़ी से बड़ी संख्या के हित की बात सोचना, रूढ़ियों का उत्पाटन करना, शोषित मानव को उसके अधिकार दिलाना और अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाना प्रगतिशील साहित्य का उद्देश्य रहा है। वर्ग-संघर्ष अत्याचार का विरोध है, वह शोषण के विरुद्ध उठी हुई आवाज और कार्य है, उसे वैमनस्य-प्रचार समझना भूल है। यदि प्रगतिशील की मोहर लगाकर कोई व्यक्ति विशेष ऐसी रचनाएँ प्रकाशित करता है जो अश्लील हैं, तो उनमें न प्रगतिशील साहित्य का दोष है न उसके उन्नायकों का। इसलिए उन लोगों को जो गन्दे साहित्य पर प्रगतिशील की मोहर लगी देखकर प्रगतिशील साहित्य के विषय में ही अपनी राय बुरी बना लेते हैं, इस विषय में अधिक सोच-विचार से काम लेना चाहिए। प्रगतिशील साहित्य वही है जो मानव को आगे बढ़ाए। जो साहित्य ऐसा नहीं करता वह किसी के कह देने अथवा लिख देने से ही प्रगतिशील नहीं हो जायगा।

'नई राहें' की कहानियों में मैंने अधिकतर उक्त आदर्श का पालन करने की चेष्टा की है। मुझे अपने कार्य में कहाँ तक सफलता मिली है इसका निश्चय करना मेरा कार्य नहीं है। मित्रवर श्रीयुत कृपाशंकर मिश्र ने इस संग्रह के लिए कहानियाँ चुनने में जितना परिश्रम किया है उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद न दूँ, यह कैसे सम्भव है।

रायगंज
झाँसी

गंगाप्रसाद मिश्र

निर्देशिका

गंगा-लाभ

अब तो यह बस कहने-सुनने की बात रह गई है कि किसी समय गंगादेई का जन्म गंगा की बड़ी मान मानने के बाद हुआ था। कहा जाता है कि गंगादेई के माता-पिता निपूते थे। एक संतान का मुख देखने के लिये वे व्याकुल थे, सारे देवताओं की पूजा-पाती का जब कोई प्रभाव न हुआ तो गंगा की मानता मानी गई और गंगा ने दम्पत्ति की अभिलाषा पूरी की। शक्कर की मेढ़ इस उपलक्ष्य में गंगा के किनारे बनवायी गई, यथाशक्ति गंगा-पुत्रों को भोजन करवाया गया और गंगा-माई का प्रसाद जवार भर में बाँटा गया।

गंगादेई ने जन्म से ही जैसे गंगा की आराधना को संस्कार-रूप में ग्रहण किया। कोई ऐसा बड़ा तीज-त्यौहार न जाता जब वह अपने गाँव से सुदूरस्थित गंगा में स्नान के लिये न जाती हो। गंगा ने उसे दिया भी सब कुछ, हीरा ऐसा पति उसे मिला और भीष्म ऐसा पुत्र जो माता के लाख कहने और रोने-धोने पर भी इस कारण विवाह न करता था कि उसकी पत्नी आकर उसकी वृद्धा माता की सेवा और उनके परस्पर प्रेम में बाधक होगी। दुर्भाग्य से उसके पति का देहान्त वृद्धावस्था में हो गया और अपने जीवन के अन्तिम दिनों में गंगादेई को वैधव्य दुख भोगना पड़ा पर इस घटना ने उसकी धार्मिक प्रवृत्ति को और भी तीव्र कर दिया। अब उसकी एक ही साध थी, कि गंगा की गोद में प्रवाहित होकर अपने पति से जा मिले।

उसकी यह साध पूरी होने में बहुत दिन न लगे। उस दिन गंगादेई

जैसे ही ब्रह्म मुहूर्त में उठने का प्रयत्न करने लगी तो उसे अपनी देह कुछ टूटती हुई सी मालूम हुई, रात में कुछ नींद भी ठीक न आई थी। एकदम उसके हृदय में यह बात आई कि अब अन्तिम समय आ गया। कुछ प्रसन्नता सी इस बात को सोच कर हुई, कुछ दुख भी हुआ—मेरा बेटा अब अकेला रह जायगा, उसके खाने-पीने की साज़ सँभाल कौन करेगा। ईश्वर सबको देखने सँभालने वाला है, यह सोच कर मनको समझाया। उठने का एक बार फिर प्रयत्न किया, पर बढ़ती हुई कमज़ोरी ने उसे विवश कर दिया। यही सोचते विचारते दिन निकल आया, तब उसने आवाज दी—केशव बेटा केशव !"

केशव हड़बड़ा कर उठ बैठा। वह भी मुह अँधेरे का उठने वाला था पर रात में महावीर जी के मन्दिर पर भजन में ज्यादा रात हो गई थी इसी कारण वह आज सुबह न उठ सका था। वर्ना इस वक्त तक तो वह सन्ध्या-पूजा समाप्त कर चुका होता था। आँखें मलता हुआ उठा तो देखा माँ अब तक पड़ी हैं। बड़ा आश्चर्य हुआ उसे; इतनी उम्र हुई माँ को उसने कभी सवेरे उठने पर बिस्तरे पर न पाया था। वह जब उठता तो उन्हें नहाये हुये तुलसी चौरे पर पूजा करते हुये देखता था।

"क्यों, क्या बात है माँ ?"—उसने पूछा।

"मेरा जी बहुत खराब मालूम होता है, बेटा," माँ ने उत्तर दिया।

माँ की आवाज़ की कमज़ोरी केशव के आश्चर्य का कारण हुई। ऐसा क्या हो गया माँ को एक ही रात में जो इतनी कमज़ोर मालूम हो रही है ? जल्दी से वह उनके पास जा पहुँचा, बदन पर हाथ रक्खा तो वह बुख़ार की गर्मी से जल रहा था। "तुम्हें तो बुख़ार है माँ।"

"अभी थोड़ी देर से चढ़ आया है, रात में नींद भी कम पड़ी थी; सवेरे बदन में कुछ दर्द मालूम हुआ और बुख़ार चढ़ आया।"

केशव के गाँव के वैद्य बड़े होशियार हैं; फौरन उनकी याद आई।
"अभी वैद्य जी को बुला कर लाता हूँ; माँ।"

चलने को तैयार होते हुये केशव का हाथ पकड़ कर माँ ने कहा—
"अब कोई ज़रूरत नहीं है बेटा; मेरा मन कहता है कि अब चलने का समय आ पहुँचा।"

"कैसी बात कहती हो, माँ! ज़रा से बुख़ार में इतना घबड़ा गई;" कहता हुआ केशव घर से बाहर निकल गया। फिर भी चिन्ता और शोक उसके मन में बैठ गये। पड़ोसिन काकी को पहले जाकर माँ की देख-भाल करने के लिये घर भेजा; तब स्वयं वैद्य जी के यहाँ दौड़ा।

जब केशव वैद्यजी को लेकर लौटा तो देखा कि माँ की दशा पहले से ज्यादा बिगड़ गई थी? बढ़ी हुई कमजोरी के कारण बेहोशी आ रही थी और उनकी आँखें बन्द होती जा रही थीं।

वैद्यजी ने भली भाँति परीक्षा करके दवा दी, और वह विधिवत् दी भी गई, पर दशा सुधरने के बदले बिगड़ती ही चली गई। एक आदमी शहर डाक्टर लेने भेजा गया। सारा गाँव जुटा था, क्योंकि दोनों माँ-बेटे सदा सब के सुख-दुख में खड़े होते थे। केशव तो पागल हुआ जा रहा था।

सन्ध्या समय गंगादेई ने आँखें खोलीं, केशव सामने ही खड़ा था; माँ को आँखें खोलते देख कर वह उससे लिपटकर रोने लगा, "कैसा जी है माँ तुम्हारा?"

माँ बड़ी मुश्किल से कह सकीं—"धीरज धरो बेटा किसी के भी माँ-बाप जिन्दगी भर बैठे नहीं रहते; आज मेरा अन्तिम समय आ गया। अब मुझे करना भी क्या है, बेटा; तू मुझे गंगालाभ कर देना, फिर

जैसे ही ब्रह्म मुहूर्त में उठने का प्रयत्न करने लगी तो उसे अपनी देह कुछ टूटती हुई सी मालूम हुई, रात में कुछ नींद भी ठीक न आई थी। एकदम उसके हृदय में यह बात आई कि अब अन्तिम समय आ गया। कुछ प्रसन्नता सी इस बात को सोच कर हुई, कुछ दुख भी हुआ—मेरा बेटा अब अकेला रह जायगा, उसके खाने-पीने की साज़ सँभाल कौन करेगा। ईश्वर सबको देखने सँभालने वाला है, यह सोच कर मनको समझाया। उठने का एक बार फिर प्रयत्न किया, पर बढ़ती हुई कमज़ोरी ने उसे विवश कर दिया। यही सोचते विचारते दिन निकल आया, तब उसने आवाज दी—केशव बेटा केशव !"

केशव हड़बड़ा कर उठ बैठा। वह भी मुह अँधेरे का उठने वाला था पर रात में महावीर जी के मन्दिर पर भजन में ज्यादा रात हो गई थी इसी कारण वह आज सुबह न उठ सका था। वर्ना इस वक्त तक तो वह सन्ध्या-पूजा समाप्त कर चुका होता था। आँखें मलता हुआ उठा तो देखा माँ अब तक पड़ी हैं। बड़ा आश्चर्य हुआ उसे; इतनी उम्र हुई माँ को उसने कभी सवेरे उठने पर बिस्तरे पर न पाया था। वह जब उठता तो उन्हें नहाये हुये तुलसी चौरे पर पूजा करते हुये देखता था।

"क्यों, क्या बात है माँ ?"—उसने पूछा।

"मेरा जी बहुत खराब मालूम होता है, बेटा," माँ ने उत्तर दिया।

माँ की आवाज़ की कमज़ोरी केशव के आश्चर्य का कारण हुई। ऐसा क्या हो गया माँ को एक ही रात में जो इतनी कमज़ोर मालूम हो रही है? जल्दी से वह उनके पास जा पहुँचा, बदन पर हाथ रक्खा तो वह बुख़ार की गर्मी से जल रहा था। "तुम्हें तो बुख़ार है माँ !"

"अभी थोड़ी देर से चढ़ आया है, रात में नींद भी कम पड़ी थी; सवेरे बदन में कुछ दर्द मालूम हुआ और बुख़ार चढ़ आया।"

केशव के गाँव के वैद्य बड़े होशियार हैं; फौरन उनकी याद आई। "अभी वैद्य जी को बुला कर लाता हूँ; माँ।"

चलने को तैयार होते हुये केशव का हाथ पकड़ कर माँ ने कहा—"अब कोई ज़रूरत नहीं है बेटा; मेरा मन कहता है कि अब चलने का समय आ पहुँचा।"

"कैसी बात कहती हो, माँ! ज़रा से बुख़ार में इतना घबड़ा गईं;" कहता हुआ केशव घर से बाहर निकल गया। फिर भी चिन्ता और शोक उसके मन में बैठ गये। पड़ोसिन काकी को पहले जाकर माँ की देख-भाल करने के लिये घर भेजा; तब स्वयं वैद्य जी के यहाँ दौड़ा।

जब केशव वैद्यजी को लेकर लौटा तो देखा कि माँ की दशा पहले से ज्यादा बिगड़ गई थी? बढ़ी हुई कमज़ोरी के कारण बेहोशी आ रही थी और उनकी आँखें बन्द होती जा रही थीं।

वैद्यजी ने भली भाँति परीक्षा करके दवा दी, और वह विधिवत् दी भी गई, पर दशा सुधरने के बदले बिगड़ती ही चली गई। एक आदमी शहर डाक्टर लेने भेजा गया। सारा गाँव जुटा था, क्योंकि दोनों माँ-बेटे सदा सब के सुख-दुख में खड़े होते थे। केशव तो पागल हुआ जा रहा था।

सन्ध्या समय गंगादेई ने आँखें खोलीं, केशव सामने ही खड़ा था; माँ को आँखें खोलते देख कर वह उससे लिपटकर रोने लगा, "कैसा जी है माँ तुम्हारा?"

माँ बड़ी मुश्किल से कह सकीं—"धीरज धरो बेटा किसी के भी माँ-बाप जिन्दगी भर बैठे नहीं रहते; आज मेरा अन्तिम समय आ गया। अब मुझे करना भी क्या है, बेटा; तू मुझे गंगालाभ कर देना, फिर

ब्याह करके सुख से रहना, यही मेरी कामना है। अब मुझे रामायण पढ़कर सुनाओ!"

केशव बिलखता रहा।

डाक्टर और वैद्य के सब प्रयत्न माँ को न रोक सके और सुबह होते-होते वे केशव को छोड़ कर चल बसीं।

टिकटी बनाकर गाँववालों ने शव को गाँव के बाहर तक पहुँचाया, फिर वह बैलगाड़ी पर रख दिया गया। केशव गाड़ी लेकर चला, तो गाँव के बहुत से लोग साथ चलने को हुए पर केशव अब तक संयत हो चुका था। उसने सब को वापिस भेजा, क्योंकि पहला पानी हो चुका था और खेतों की जुताई हो रही थी। यह समय खोने का न था। कहीं धूप निकल आतीं और खेत सूख जाते तो हल लगना कठिन हो जाता।

× × ×

गाड़ी पर माँ के शव को लेकर केशव चला तो उसके स्मृति-पटपर जीवन के पहले चित्र एक एक करके आने लगे। न जाने कितनी बार वह इसी मार्ग पर माँ की गोद में बैठकर गंगा नहाने गया था। अनेक बार मेलों और पर्वों पर झुंड के झुंड गाँव से नहाने आते थे। वह उन दिनों को कैसे भुला सकता था। जब रास्ते के किनारे लगी हुई दुकानों से खिलौने खरीदने को वह माँ से मचल जाया करता था। और माँ अपनी सारी पूँजी बेटे की साध पूरी करने में लगा कर यह भूल जाया करती थी कि वह अपने अथवा घर के लिये किन चीजों को खरीदने के वास्ते पैसे लाई थी। कतकी के मेले के वे दिन कैसे भुलाये जा सकते थे जब गाड़ियों में बैठी हुई स्त्रियाँ गाती हुई चलती थीं—

जतन बताये जैयो, कैसे दिन कटिहैं!

बच्चे शोर मचाते खेलते-खाते, पुरुष गन्ने चूसते और बिरहा गाते

हुए—'गहरी कुइयाँ खुदाव मोरे राजा!' रास्ते को अपनी मस्ती से जैसे छोटा कर देते थे।

आज जब एकाकी वह अपनी माँ के शव को लेकर जा रहा था, वे सुखद दिन एक-एक करके केशव की आँखों के सामने आ रहे थे। बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था के दृश्य जिन्हें वह आज तक बिल्कुल भूला हुआ था, मन उसकी आँखों के सामने नाच रहे थे। न जाने कितनी बार बैल खेतों में फँसे होने के कारण माँ पैदल ही आई थी और अपने लाल, केशव को गोद में लिये हुए ही उसने इतना लम्बा रास्ता तय किया था। फिर उसे वह दिन याद आया जब वह युवा हो गया था और रास्ते में चलती हुई घूँघट काढ़े हुये नई बधुओं को देखकर माँ ने कहा था—"बेटा, ऐसी तेरी भी दुलहिन आ जाती तो मैं वह सुख देख लेती!" यद्यपि शव कोई ऐसी अमूल्य वस्तु नहीं जिसे कोई चुरा या उठा ले जाय पर केशव के मन में बार-बार ऐसी आशंका सी उत्पन्न होती थी कि वह घूम-घूम कर देख लेता था कि गाड़ी पर शव रक्खा है या नहीं।

यद्यपि उसने विवाह इसी आशंका से नहीं किया था कि कहीं बहू आकर माँ और उसके स्नेह-बन्धन में बाधक न हो, पर उसे आज इसी बात का पछतावा हो रहा था कि उसने अपनी माँ की यह साध पूरी न की।

वे सुखद दिन आज दुख का कारण हो रहे थे, एक-एक को स्मरण करके कलेजा मुँह को आता था। रास्ता काटे न कटता था, सौ कोस का हुआ जा रहा था।

× × ×

जब केशव गंगाघाट पहुँचा, गोधूलि का समय था। वह फैला खुला प्रदेश साँय-साँय कर रहा था। उसकी गाड़ी को देखते ही गंगापुत्र,

घाटवाला, मेहतर, महाब्राह्मण, सब ईकट्ठे हो गये; वह भी एक नहीं कई-कई अदद। उनमें से ज्यादा तर लम्बे-तगड़े थे। कठिन पेशानियाँ, खूब उभरे हुये चौड़े सीने उनकी फतुही और ऊँची-ऊँची धोतियों से जैसे निकले पड़ रहे थे। मरोड़ी हुई, चढ़ी हुई बड़ी-बड़ी मूछें चेहरे को भयानक बना रही थीं। सबके पास साम चढ़ी हुई, चिकनी, मोटी लाठियाँ थीं। केशव इन सब को श्रद्धा की दृष्टि से देखना चाहता था, क्योंकि वे उसकी माता के स्वर्गारोहण में सहायक होने वाले थे। पर, उन पर दृष्टि पड़ते ही उसके हृदय में न जाने क्यों भय का संचार हुआ; कदाचित् उनके चेहरों पर उसे सहानुभूति के दर्शन न हुए, इसीलिये उसे उनकी दृष्टि बिल्कुल उन क़साइयों से मिलती-जुलती मालूम हुई जो बक़रे के बाज़ार में आने पर यह अन्दाज़ लगाते है कि इस बक़रे में कितना गोश्त है। वह उन्हें देख कर घबड़ा गया। उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसने गाँव से किसी को साथ न लाकर गलती की। उनकी ओर देखने का उसका साहस न हो रहा था। जो घूम कर पीछे की ओर देखा तो उसका मित्र मोहन साइकिल पर दौड़ता हुआ घाट की ओर आ रहा था। उसे देख कर केशव को गाड़ी सें उतरने का ध्यान आया वह उतरा; इतने में मोहन आ कर उससे लिपट गया, दोनों ही खूब मिल कर रोये।

संयत होकर मोहन ने पूछा—"क्यों जी तुम अकेले क्यों आये? गाँव से एक आदमी भी न लाये!

मोहन बोला—"आने को बहुत से लोग तैयार थे, पर मैं ही नहीं लाया। आज कल काम का वक्त है।"

"भाड़ में जाय ऐसा काम; काम तों रोज ही होते रहते है। एक रोज़ न सही। टोला-पड़ोस के लोग होते कब के लिये हैं। इस दिन भी काम न आये तो कब आयेंगे। अच्छे तुम मना करने वाले और तुमसे

होम अच्छे वे, जो तुम्हारे मना करने से मान गये! मैं तो तीन रोज़ से बाज़ार गया था, दुकान लेकर तीसरे पहर लौटा तो मालूम हुआ कि अम्मा नहीं रहीं और तुम उन्हें लेकर अकेले यहाँ आये हो।" 'अम्मा' कहते-कहते मोहन की आँखों में आँसू आ गये। उसने अपनी माँ के न रहने पर केशव की माँ को ही माँ समझा था, और माँ ने भी कभी उसे केशव से कम न समझा था। उन्हीं स्नेहमयी की मृत्यु को सुन कर वह गाँव में कैसे रुक सकता था। फिर उसने अपने आपको संयत किया। केशव से कह कर शव को गाड़ी से उतारा और बैल खोलने लगा।

बैल खोलते हुये उसने केशव से पूछा—"लकड़ियों के लिये कहा?"

"अभी कहाँ, मैं तो आकर खड़ा ही हुआ था, वैसे ही तुम आ गये।"

"कितनी आवेंगी लकड़ी?" केशव ने पूछा।

इसके पहले कि मोहन जवाब दे, घाटवालों में से एक बोल उठा—"बारह मन से कम क्या लगेंगी।"

"बारह मन!" मोहन चौंक कर बोला—हाड़ ही हाड़ तो हैं क्या होगा बारह मन का!"

"लोगों को जब लकड़ी तक में किफ़ायत करनी होती है तो पता नहीं जलाने की सोचते ही क्यों हैं। गाड़ दें, कहीं वहीं, और छुट्टी पा जाँय, सब खर्च से छुट्टी मिले"—उनमें से एक ऐसी आवाज़ से बोला जो धीमी तो जरूर थी, पर इन लोगों के सुनने के लिये पर्याप्त थी।

सुन कर मोहन को बड़ा बुरा मालूम हुआ, पर उसने जब्त किया। केशव ने कहा—"जितनी ये लोग कहें उतनी मँगा लो, मोहन!"

"नहीं जी, हमारा काम है; हमें समझना-बूझना है। यों तो आठ ही मन काफ़ी है, पर मँगा लो दस मन।"

गंगा पुत्र के तेवरों में बल पड़ गये, पर उसने कहा—"हाँ, हाँ, जैसा ठीक समझो। आप दाग़ दोगे, बाबू जी!" केशव की ओर देख कर उसने कहा—"तो आप बाल बनवालो!"

केशव ने कहा, "अच्छी बात है।"

गंगा-पुत्र ने ज़ोर से आवाज़ दी, "लखना कहाँ है रे, चल बार बना आयके!"

"आयेन पंडित!" लखन की आवाज़ बहुत दूर से सुनाई दी।

पंडित ने वहीं से लकड़ी वाले को आवाज़ दी, "जियावन, दस मन लकड़ी भेज देव!"

"अच्छा महाराज! जियावन बोला।

इतने में नाई किस्मत लिये हुये आ गया।—"सवा रुपया होगा इस वक्त, मालिक!"

"सवा रुपया!" मोहन ने कहा, "एक आदमी की हज़ामत का सवा रुपया!"

उनमें से कोई फिर वैसे ही बोला, "तेली का तेल जले मसालची—"

"क्या कहते हो तुम लोग हम और वह क्या अलग अलग हैं?"

नौआ बोला—"मालिक यह तो गंगाघाट है, जो कुछ दे डालोगे दान धरम में शामिल होगा। हम दिन ही माँ दस आने से कम नहीं लेते हैं। इस वक्त सवा रुपये से कम में न बनावेंगे!"

"सवा रुपया तो हम नहीं देंगे," फिर भी मोहन ने कहा।

"तो फिर मैं नहीं बनाऊँगा!" कह कर नौआ चल दिया।

"बनवा लीजिये, बाबू, बनवाना तो है ही, और इस वक्त दूसरा नाई भी तो यहाँ न मिलेगा। लौट आ लखना, एक रुपया ले लेना" पंडित ने, समझौता कराया।

लखना लौटा और केशव का सिर मूड़ने लगा। मोहन ने मन ही मन कहा—कैसी मिली भगत है!

केशव सोच रहा था—यह कैसा बर्ताव है इन लोगों का, मालूम होता है जैसे लूटने के लिये ही बैठे हैं। जिसको देखो वह कर बोल रहा है। जिन गरीबों के पास कुछ न होता होगा उनका पार कैसे लगता होगा!

केशव के बाल बन जाने पर शव को नहलाने के लिये, गंगा पुत्र ने कहा। शव केशव और मोहन लेकर चले। उन माँ की लाश जिनके शरीर में कुछ न था इस समय केशव और मोहन दोनों को ही भारी लग रही थी। बोझ उठाने से जो कष्ट मनुष्य के हृदय में होता है वह तो उनके हृदयों में किंचित मात्र भी न था पर एक आशंका और भय था कि कहीं ऐसा न हो कि शव हाथ से छूट जाय। ज़मीन पर गिरने से शव को चोट नहीं लगती, पर उस समय मनुष्य इतने भावुक हो जाते हैं कि दुर्घटनावश अगर कभी ऐसा उनके हाथ से हो जाता है तो उन्हें जितना दुख होता है उतना शायद बच्चे या बीमार के हाथ से छूट जाने पर भी नहीं होता।

रात हो चुकी थी और घना अँधेरा सारी पृथ्वी पर फैल गया था, आसमान में बादलों ने घिरना शुरू करके अन्धकार को और भी घना कर दिया था। घाटवाला केशव से पैसे लेकर एक बड़े कुल्हड़ में आधा सेर तेल ले आया था, और उसी से एक मशाल उस घने अँधेरे को दूर करने के लिये जला ली गई थी। मशाल की जलती हुई लौ की मोटी रेखा उस अन्धकार की विशालता को सिर पर उठाये हुए सी प्रतीत होती थी, जैसे किसी बहुत ही पतले तने पर कोई डालियों और पत्तियों का घना सा समूह दूर से टँगा हुआ दिखाई दे रहा हो।

केशव और मोहन शव को लिये हुए सँभल-सँभल कर गंगा में

उतरने का प्रयत्न कर रहे थे, पग-पग पर फिसलने का डर लग रहा था। दुख का एक तूफ़ान सा उमड़ कर उनके हृदय व मस्तिष्क को झकझोरे डाल रहा था जिसके कारण उनका सारा शरीर शिथिल सा होता हुआ प्रतीत हो रहा था। घाटवाला मशाल लिये बिल्कुल किनारे पर आ खड़ा हुआ था और उन्हें रास्ता बताता जाता था, "बस बस अब आगे न जाना, उधर गहरा है!" जब कि केशव और मोहन यह सोच कर आगे बढ़े जा रहे थे कि प्यारी माँ के शव को किनारे के गन्दे पानी में क्यों नहलायें।

मशाल की रोशनी उस अन्धकार को दूर करने में समर्थ न हो रही थी। क्योंकि तेल में पानी मिला हुआ था, घाटवाला बार-बार मशाल पर कुल्हड़ से तेल डालता था पर तेल रोशनी कम बढ़ाता था, चिड़चिड़ाहट की आवाज़ ज्यादा पैदा करता था।

शव को पानी में डुबकी देकर नहलाने की क्रिया पूरी हो गयी तो गंगापुत्र बोला—"ज़रा बालू मुँह खोलकर लगा दो।" केशव ने रोते हुए वह भी किया। फिर दोनों ही लड़खड़ाते पैरों को जमाते हुए शव लेकर ऊपर आये।

लकड़ी लाने वाले मज़दूरों ने तब तक लकड़ियाँ ढेर कर दी थीं। वे मज़दूरी के लिए खड़े हुए बेसब्री से तगादे कर रहे थे। केशव ने सोचा यह झंझट भी सिर से हटाऊँ। रुपये की तीन पसेरी लकड़ियाँ मिलीं थीं; छब्बीस रुपये पौने ग्यारह आने लकड़ी वाले ने उसके लिये फिर सौ गज़ से लकड़ी लाने की मज़दूरी मज़दूरों ने एक आना रुपया के हिसाब से वसूल की। मोहन झुँझला-झुँझला पड़ता था—"सब तरफ से जैसे लूट मची हुई है। जैसे गिद्ध बेदर्दी से शव को नोचते-खसोटते वक्त दया, करुणा को पास नहीं फटकने देते हैं, वैसे ही इन सब का हाल है!" वह उठा और चिता बनाने लगा तो उसने

देखा कि लकड़ियाँ दस मन क्या आठ मन भी न थीं, पर कुछ बोला नहीं।

गंगापुत्र ने अपनी कड़कती हुई आवाज़ में केशव से कहा—"अब तुम करीब जाव, ये चकुआ लेव और लाश टिकटी से अलग कर देव।"

केशव ने कहा, "चाकू की क्या ज़रूरत है!"—और वह सुतली खोलने का प्रयत्न करने लगा, पर सुतली भीग जाने के कारण खुलती ही न थी। तब उसे विवश होकर चाकू लेना पड़ा। चाकू से वह बड़ा सँभल-सँभलकर सुतली काट रहा था, डर लगता था कि चाकू कहीं शरीर में न भुक जाय। यद्यपि निर्जीव शव के चोट खाने का अथवा घायल होने का कोई अन्देशा न था पर केशव का हाथ काँपता हुआ ही चल रहा था।

चिता लग जाने पर लाश उस पर रख दी गई। गंगापुत्र एक लोटे में गंगाजल भर कर ले आया था—"लेओ जी, तुम यहाँ बैठो।" केशव वहीं चिता की बगल में उकड़ूं होकर बैठ गया। गंगापुत्र ने बिन्दुमात्रेण संस्कृत के अनुसार हर शब्द में अनुस्वार लगा कर एक शुद्ध-अशुद्ध मंत्र की पैरोडी सी पढ़ना शुरू की। साथ में कहता जाता था, "हाथ में जल लै लेव, सवा रुपया लै लेव, अपनी माता का नाम लै लेव, अमुक गोत्र, कौन से गोत्र है—भारद्वाज।"

इस तरह न जाने कितनी विधि निकाल कर सवा-सवा रुपये और दस-दस पाँच-पाँच आने करके उसने दस-ग्यारह रुपये केशव से ऐंठ लिये। हर विधि के बाद एक टका सांगिता का चलता था। केशव भी मन में सोचने लगा था कि यदि यही क्रम चलता रहा तो कहीं दिवाला न निकल जाय। यह लोग तो मालूम होता है कि जैसे यह समझते हैं कि हर एक आदमी क़ारूँ का ख़ज़ाना अपने साथ लेकर

आता है। इन्हें तो दयालु होना चाहिये, एक-से-एक दुखी ग़रीब इनकी शरण में इस आशा से आते हैं कि ये मृत आत्मा के शान्ति पाने में सहायक होंगे, ये तो धर्मराज हैं। फिर भी ये ऐसी निर्ममता कैसे बर्तते हैं !

गंगापुत्र ने कहा—"गंगा के किनारे अब अपनी माता के नाम पर पाँच गोदान कराय देव।"

"पाँच गोदान कितने के होंगे महाराज ?"—केशव ने पूछा।

"ढाई-ढाई रुपये से कम के क्या होंगे।" गंगापुत्र ने दृढ़ता से कहा।

"यानी साढ़े बारह रुपये। लगभग इतने ही तो मैं पहले दे चुका हूँ।"

"दै चुके हो तो धर्म के नाम पर दै चुके हौ, अपनी माँ का परलोक बनावै के लिये दै चुके हौ, ऐसे तो कबहूँ आयके हमका दै नहीं गये रहौ।" गंगापुत्र ने कड़ी बोली में कहा। "गोदान न कराओगे तो यमराज के हियाँ कुत्ता-नोचन मचिहैं। ई तुम्हार महतारी है, बड़ी साध से पालिस पोसिस होई कि हमार बेटवा लोक-परलोक दोनों बनाय देई—कितनी-कितनी तकलीफ़ तुम्हारे मारे सहेस होइहैं, और तुम हौ जो ओहके वास्ते चार पैसा का मुँह ताकि रहे हौ।"

मोहन से अब बर्दास्त न हुआ। उसका ख़ून बड़ी देर से धीरे-धीरे खौल रहा था, अब एकदम उबल पड़ा, चिल्लाकर बोला—"ये सब हमारे समझने की बात है, तुमसे इसका कोई मतलब नहीं। जब हम इतना नहीं देना चाहते तो . ।'

"'नहीं देना चाहते' का का मतलब ? हियाँ देना पड़िहै, यह गंगाघाट है। जब तक दान-दच्छिना पूरी न होइहै लास ऐसे पड़ी रहिहै।" कड़क कर बोला गंगापुत्र। उसकी आँखें सुर्ख हो गयीं।

मोहन ने खड़े होकर ज़ोर से कहा—"तो तुम लाश में आग नहीं लगाने दोगे ?"

"हाँ, हाँ, नहीं लगाने देंगे, तुम इतना अकड़त काहे हौ ! हर' बार में। मालूम नहीं है सरकार का टिकस देत हैं ? हमारी मर्ज़ी बिना यह कौनो काज नहीं होई सकता है !"

"तो तुम मनमानी घरजानी करोगे ?"

"करेंगे तो तुम रोक लेओगे ? बड़े बारहाँ हौ !" गंगापुत्र ने कह तुम्हें मालूम है, यह ज़मीन के पीछे साल माँ दुई-एक कतल हुई जात है दुई-चार का फाँसी-डामिल हुई जात है। जो हम लोगन का मिलत होत तो मूड़ दै-दै के ई ज़मीन पर काहे कब्जा रक्खा जात। अब तक अगर कोई बराबर का होता तो एकाध मूँड़ अब तक फूट चुका होता कमज़ोर समझ के जितना चुपात जाइत है उतना तुम मूड़ पर चढ़ जात हो"—कह कर गंगापुत्र खड़ा होने को हुआ, और खड़े लोगों भी अपनी लाठियाँ संभाल लीं।

केशव ने देखा सब नक्शा ही बदला जाता है तो वह हाथ जोड़क खड़ा हो गया—"महाराज, हम तुम्हारे शरणागत हैं, हमारे ऊपर इतन क्रोध !" फिर मोहन से कहा—"तुम चुप रहो मोहन, देश-काल देख क बातचीत किया करो।"

केशव के शब्दों ने सब को शान्त कर दिया। मोहन भी चुप हो गया—गंगापुत्र ने भी सवा छः रुपये में गोदान करा दिये। पाँच ब्राह्मण का भोजन बोल देने को कहने लगा। केशव ने किसी तरह चिरौरी करके दो पर उसे राज़ी किया। अन्त में वह अपनी दक्षिणा माँगने लगा, पाँच से उसने मोल भाव शुरू किया, बड़ी मुश्किल से ढाई पर तैयार हुआ अब उसने केशव से आग देने को कहा।

केशव ने अपने सारे शरीर की शक्ति हाथों में संचित करके रोते

बिलखते हुये जलता हुआ पतावर लेकर चिता में आग दी। अब तक जैसे उसे एक सहारा सा बना हुआ था, अब उसे पूर्ण रूप से मालूम हुआ कि उसका प्रथम तथा अन्तिम सहारा टूट गया, अब उसका कोई न रहा, वह किसी का न रहा।

चिता की आग धीरे-धीरे बढ़ कर फैलने लगी, हाथ-पैर सब उसने घेर लिये। उस घने अन्धकार को भेदकर लपटों ने ऊपर उठने का प्रयत्न किया।

आग के बढ़ते ही हवा चारों तरफ से घिर घिर कर उसकी तरफ़ आने लगी और आग बढ़ने लगी।

"अब नहाओ भैया चल के!" घाटवाले ने कहा।

"अभी से?" केशव ने कहा। "लाश जल जाने पर आग व फूल पानी में प्रवाह करके, राम राम लिख के जायँगे।"

"यह सब हम लोग कर लेंगे भैया, क्यों हलाकान होते हो, और हम सब लोगों को भी करते हो। चलो नहाओ चलके, ब्राह्मणों को मिठाई दिलवाय देव, भुखाय गये हैं, कुछ जल पियो और अपने घर का जाव।"

गंगापुत्र ने कहा—"इसमें कोई दौलत थोड़े ही रखी है जो हम-लोग निकाल लेंगे? सबै लोग लाश जलाय के एही तरह छोड़ जात हैं। जलि जायँ पर राख गंगाजी मा परवाह कर दीन जात है।"

मोहन ने आखों ही आँखों केशव से पूछा—क्या कहते हो,- केशव? केशव ने वैसे ही कहा—जैसा तुम ठीक समझो।

उस वातावरण ने उन दोनों का मन बोझिल कर दिया था। रह-रह कर सियारों की आवाज़ सुनाई दे रही थी। कुत्ते इस बुरी तरह आसपास घूमते थे, मालूम होता था टूट पड़ेंगे। थोड़ी दूर पर कुछ कुत्ते पानी में लड़ रहे थे, कोई अध-जला शव उनके झगड़े का कारण था। चिता के प्रकाश का घेरा इतना छोटा था जैसे अन्धकार उसे चारों ओर से दबाये

ले रहा हो। बढ़ी हुई गंगा हहर-हहर कर बह रही थीं; उन्हें देखकर भी इस समय श्रद्धा से अधिक भय ही उत्पन्न होता था।

दोनों ने चलना ही ठीक समझा। चिता को अत्यन्त श्रद्धा से दण्डवत करके वे नहाने को घाट की तरफ चले।

मशाल के प्रकाश में फिर गंगा में उतर कर नहाये। गंगापुत्र, अन्य दो ब्राह्मण और घाटवाला अभी उन्हें भोजन के लिये घेरे थे। बड़ा प्रयत्न करके उन लोगों ने दुकानें खुलवायीं, क्योंकि रात काफी हो चुकी थी, दुकानें बन्द हो गयीं थीं।

केशव ने कहा—"दो ब्राह्मणों के लिये मिठाई दे दे दो।"

"कितनी? कितनी?" दुकानदार ने पूछा।

"तुम्हें मालूम नहीं है, सवा-सवा सेर खाते हैं, आज कोई पहली दफे आये हैं तुम्हारी दुकान पर, जो पूछ रहे हो?"

"सवा-सवा सेर!" केशव ने आश्चर्य प्रकट किया। उससे न रहा गया।

"हाँ, हाँ, खिलाय के देख लेव। एक-एक ऐसा ऐसा आदमी यहाँ आता है जो हजारन रुपया दै जाता है, तुम्हें भरपेट खवावै माँ मुश्किल पड़त है?" ब्राह्मण देवता बोले।

किसी तरह सेर भर पर वे राजी हुये। दोनों ब्राह्मणों और गंगा-पुत्रों ने सेर-सेर भर लिया, आध सेर घाटवाले ने लिया।

मोहन ने पाव भर मिठाई लेकर किसी तरह दो एक बर्फी केशव के मुख में ठूँसकर उसे पानी पिलाया खुद कुछ गले से उतार कर पानी पिया और तब गाड़ी जोत कर चले। फिर भी जब तक वह चले न गये, कहीं मेहतर पैसा माँगने आया, कहीं डोम। बराबर नोच-घसोट जारी रही।

वहाँ से निकल कर चले तो मोहन का क्रोध फिर उमड़ा, "ऐसे

बदमाश हैं साले, ओफ ओह ! पावें तो गर्दन दबा कर सब छीन लें ।"

अब केशव की भी श्रद्धा भरभरा कर गिर पड़ी। "ये तो जैसे आदमियत को पास ही नहीं फटकने देते हैं, आदमी ऐसा निर्मम हो सकता है, यह मैंने कभी न समझा था ।"

उनकी गाड़ी अन्धकार को चीरती आगे बढ़ती गयी ।

गंगा-किनारे अब फिर से गंगापुत्र, घाटवासी, और मेहतर इत्यादि इकट्ठा हो गये थे । वातावरण उस समय का कुछ अजीब भयंकर सा हो गया था । हवा शब्द करती हुई भयंकर रूप से चल रही थी, जिसमें कभी-कभी एकाध छींटे पानी के भी आ जाते थे । उस काली रात में खड़े हुए देवाकार वे सब भूतों से प्रतीत होते थे । गंगापुत्र के आदेश-पर मेहतर ने गंगा से पानी उलीच-उलीच कर अधजली चिता बुझा दी । उस गंगादेई की अधजली लाश, जिसकी पूजा-पाठ करते ही उम्र बीती थीं, मेहतर ने घसीटकर गंगा में फेंक दी । फिर सब लकड़ियाँ बुझाली गयीं और माँ-बहन की गाली-गलौज के साथ उनका आपस में बँटवारा हुआ ।

घाटवाला बोला —"अब का कहते हो पंडित । आज कुछ भाँग-बूटी न छनेगी ?"

बुड्ढे डोमके मर जानेपर उसका लड़का अभी नया ही गाँव से आया था, कच्चा था, उसे यह सब देखकर बड़ा आश्चर्य हो रहा था, पर कुछ कह न पा रहा था । अब रुक न सका, बोला—"तुम्हीं एह बखत भाँग की चलायेव !"

"अरे हट गदहा नहीं तो, हियाँ ई रोज का काम आय, ऐसे जो होय तो कबहूँ नसा-पानी हुई न पावै; है न पंडित, छनि है न ?"

"छनि है, और जरूर छनि है, कौनो-कौनो दिन कैसा नसिह होइ जात

है कि न कुछ मिले न जुले और नसा-पानी तक का वखत न मिलै।"
गंगापुत्र बोला।

"अब अस न कहौ, पंडित," मेहतर बोला—"पचीस-तीस तो तुम एही से मारेव।"

"तो मारेन तो का भवा, काम नहीं करावा? ऊ कहौ सार भूँजी साथ माँ लगि गवा आयको नही कुछ और पौतेन। ऊ सार अस टर्र-टर्र लगाये रहै कि मन होत रहै टेटुआ दबाय देई, मुला हम कहा, को हत्या ले।"

घाटवाला बोला—"हटाओ ई रहवार, चलौ अब छनै।"

"हाँ, हाँ, चलो"—कह कर वे सब गंगा के किनारे से झोपड़ियों की तरफ अँधेरे में चल दिये।

—:o:—

मौत के मुँह में

कलकत्ते की जन्तुशाला के निकट की उन कोठरियों में कारखानों में काम करने वाले मज़दूर रहा करते थे। पसीने की कमाई खाने वाले उन मज़दूरों की कोठरियों में उस समय आधिक्य और प्राचुर्य चाहे न हो पर अपनी आवश्यकता की वस्तुओं की उन्हे कमी भी न पड़ती थी क्योंकि उन्होंने अपनी थोड़ी सी आमदनी रूपी चादर के अनुसार ही पैर फैलाना सीखा था। उन्होंने बड़ी-बड़ी पुस्तकें न पढ़ी थीं, बुद्ध के 'आवश्यकताओं को घटाओ, सन्तोष करो'—वाले सिद्धान्त को वे न जानते थे। पर झोपड़ियों में रहकर महलों का ख्वाब देखने वाले वह न थे। रोज़ कुआ खोदने, रोज़ पानी पीने के सिद्धान्तानुसार उनका काम चलता, अथवा गुज़र बसर होती थी। निन्यानवे के चक्कर में वे न पड़ते थे न तिजोरियों में बन्द सम्पत्ति विषयक आशंका उनकी नींद ही में बाधा पहुँचाती थी। यदि अजीर्ण उन्हें न सताता था तो भूख की ज्वाला में भी वे न जलते थे।

अनिल उनका आदर्श था, उनका हीरो (नायक) विशेष नहीं पर उसने थोड़ी शिक्षा अवश्य पाई थी। वह पढ़ा कम था, गुना अधिक। उसके बतलाये हुए रास्ते पर चल कर मज़दूर बुराइयों से बचते थे। अपने मुहल्ले में वह ताड़ी, शराब और जुए के भूत को किसी पर सवार न होने देता था. वे सब भी उसकी सलाह मानते थे क्योंकि वह उनके दुःख सुख में सदा होता था, उसकी होमियोपैथिक दवाइयाँ उन्हें छोटी-मोटी बीमारी से बचाती थीं। संक्षेप में—वह और उसके साथी सुखी थे।

पर वह समय हवा हो चुका था। सुख का पक्षी अपने पंख पसार कर किसी दूर देश को उड़ गया था। शान्ति का स्थान अशान्ति ने ले लिया था और सन्तोष का असन्तोष ने। अब तो उनकी कोठरियाँ ग़रीबी से ही परिपूर्ण थीं। देश का अनाज मुनाफ़ाखोरों की कोठरियों में बन्द था और किन्हीं दामों न मिलता था। एक-एक मुट्ठी चावल और एक-एक टुकड़ा रोटी के लिये असूर्यमपश्या ललनाओं का सतीत्व बिकता था और माँ-बाप अपने बच्चों को गली-गली बेचते घूमते थे, जिससे वह उनके सामने भूख से तड़प-तड़प कर प्राण न दें और जिससे उन्हें उनके मूल्य स्वरूप पेट की आग को शान्त करने को कुछ मिल जाय।

ऐसे ही विकट समय में अनिल की कोठरी में उसका बच्चा चिल्ला रहा था—

'भात दो, काका भात दो, बहुत भूख लगी है। काका बहुत भूख लगी है।'

अनिल—कहाँ से लाऊं भात, कहीं मिले तभी तो तुझे लाकर दूँ। सभी तरफ़ तो लोग भूखों मर रहे हैं। क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आता। तीन रोज़ से तो अपने ही पेट में कुछ नहीं पड़ा। आँतों में ऐसी ऐंठन हो रही है, ऐसी पीड़ा हो रही है जिसकी बराबरी संसार की कोई वेदना नही कर सकती। बेवकूफ़ कही के संसार के लोग, कोई कहता है सिर का दर्द बड़ा भयानक होता है, कोई कहता है दाँत का। मैं कहता हूँ—भूख के दर्द से बढ़ कर कोई नही है, उसका पासंग भर भी नही।

बाप की बातों को बच्चा न समझ पाया है न उनसे उसे सन्तोष ही हो सका। चिल्लाकर वह कहने लगा—'काका भात दो, और रोने लगा।

अनिल पागलों की तरह ज़ोर से चिल्ला पड़ता है—'चुप रह वे! नहीं तो मार ही डालूँगा, आऊँ!'

'क्यों चिल्ला रहे हो अनिल दादा?'—कहता हुआ शरद अन्दर आया,—'वह रमेश दम तोड़ रहा है, चलो शायद तुम्हीं कुछ कर सको।'

'क्या कर सकूँगा मैं। देखो जी यह सब मुझे बहुत बुरा लगता है। मैं अपने ही दुखों से क्या कुछ कम दुखी हूँ जो दूसरों के में कूदता फिरूँ?'

'अब ऐसी बातें करोगे अनिल दादा। तुम्हारे ही हिम्मत दिलाते रहने और धीरज बँधाने से तो अब तक हम लोगों में से इतने ज़िन्दा हैं। वर्ना न जाने कब के काल के ग्रास बन गये होते, न जाने कितने आत्महत्या कर चुके होते। क्यों बात क्या है, आज इतने उत्तेजित क्यों हो?'

अनिल की विक्षिप्तों-सी चिल्लाहट से सहमा हुआ बच्चा कुछ देर के लिये चुप हो गया, पर पेट की आग उसे चुप नहीं रहने देती। वह फिर चिल्ला पड़ता है—'भात, भात, भूख लगी है, भूख।'

अनिल एक दम उत्तेजित हो जाता है,—इसी ने मुझे पागल कर रक्खा है, इसे खतम कर दूँ तो सारी परेशानी दूर हो जाय।' बच्चे का गला दबाने को झपटता है।

शरद दौड़ कर अनिल को पकड़ लेता है,—"है! है! यह क्या करते हो पागल हो गये हो क्या!"

अनिल—'मैं सचमुच पागल ही हो गया हूँ।'

शरद—'दादा, तुम इतने धीर-वीर होकर इस तरह व्याकुल होते हो, अब क्या मुझे तुम्हें शिक्षा देनी पड़ेगी।'

अनिल भावातिरेक में रो देता है, 'क्या करूँ शरद! इसको रोते

तड़पते, रत्ती-रत्ती घुल कर मरते नहीं देख सकता । इस हृदय के टुकड़े को खून पिला-पिलाकर पाला गया था । इसे एक-एक ग्रास भात के लिये मरते कैसे देख सकता हूँ ।

शरद—जो कुछ दिखलाई देगा सब देखना पड़ेगा । धीरज रक्खो दादा । आओ चलोगे रमेश के यहाँ तक ।

अनिल—'चलो, चलूँ, पर कोई फ़ायदा नहीं है इस आने-जाने से । भाई, उन लोगों को कोई बीमारी थोड़े ही है जिसका इलाज हो सके । यहाँ मेरी होम्योपैथिक दवाइयाँ काम न देंगी । सब बीमारियों की दवाइयाँ बनी हैं, परन्तु भूख की बीमारी का कोई इलाज नहीं है, सिवाय रोटी के ।

दोनों बाहर चलने लगते हैं तो बच्चा उनकी तरफ देखते हुए आँखों ही आँखों से अपनी भूख को प्रकट कर देता है ।

शरद—'ज़रा रुक जाओ बेटा, अभी तुम्हारे लिये भात लाते हैं ।'

शरद और अनिल बाहर निकले तो चारों तरफ से 'हाय ! भूख लगी है, भात दो बाबा भात ! हाय प्राण निकले जा रहे हैं, हाय जान निकली जा रही है, की आवाज़ सुनाई पड़ने लगी ।'

अनिल—'ओह ! कैसी दुर्गन्ध फैली हुई है ! जिधर देखो उधर मुर्दे सड़ रहे हैं । इनके उठाने का कोई प्रबन्ध नहीं हो रहा है ।'

एक व्यक्ति सामने आकर खड़ा हो जाता है, उसे देख कर ऐसा मालूम होता है जैसे मौत के मुँह में से वापिस आ गया है । उसके चेहरे के भाव से मालूम होता है कि जो कुछ कहना चाहता है उसे कहने में उसे बड़ा साहस एकत्रित करना पड़ रहा है । जैसे बड़े परिश्रम से वह कहता है—'कुछ लकड़ी का प्रबन्ध हो सकेगा बाबा ?'

अनिल—'लकड़ी कहाँ रक्खी हैं भाई ! क्यों क्या बात है ?

राहगीर—(रो देता है) जवान लड़का था, कई रोज़ से भूखा ।

अपने गाँव से यह सुनकर कलकत्ते आये कि यहाँ भोजन बँटता तो है। दो रोज तो बहुत कुश्तम-कुश्ता करने पर भी भोजन बँटने वाली खिड़की तक नहीं पहुँच सका। आज बड़ी मुश्किल से खाना मिला। खाते ही प्राण निकल गये। रोते-रोते हिचकियाँ बँध जाती हैं। तब से घूम रहा हूँ कि लकड़ी मिल जाती तो उसका काम पूरा कर देता, पर कहीं प्रबन्ध होता नहीं दिखलाई देता।

अनिल—धीरज धरो बाबा! जो कुछ देखना है सब देखना पड़ेगा। भूख से मरने वालों को लकड़ी से फूँको यह किसी शास्त्र में नहीं लिखा है। यह जो चारों तरफ सड़ रहे हैं, किसी न किसी के लाल होंगे, लाड़ले दुलारे होंगे। उनके लिये ही लकड़ी नहीं जुटाई जा सकी तो तुम्हीं कहाँ से जुटा लोगे! जाओ बाबा या तो धीरज धरो और उस मट्टी से ममता छोड़ दो या फिर अपने ही लाल के लिये ही नहीं सब के लिये रोते-रोते मर जाओ। यह कहते हुए वह आगे बढ़ जाता है।

शरद—देखो अनिल दादा सतीश आ रहा है, उससे शायद रमेश के विषय में कुछ मालूम हो।

अनिल—सतीश, सतीश, क्या हाल है रमेश का?

सतीश—वह अभी-अभी सब कष्टों से मुक्ति पा चुका है।

शरद—(वहीं बैठ कर रोने लगता है)—हाय रमेश!

अनिल—(बड़ी गम्भीरता से) क्यों रोता है! भाग्यवान् था रमेश, जो दुनिया के झँझटों से छुट्टी पा गया। उसके लिये क्या रोना, रोना तो हम लोगों के लिये चाहिये जो यहाँ सड़ रहे है।

सेठ गुलज़ारीलाल के यहाँ पुत्र-जन्म की खुशी में एक बहुत बड़ी दावत का आयोजन हो रहा है। सेठ जी ने पिछले साल अनाज के व्यापार में लाखों के वारे न्यारे किये हैं और इस साल भी उनके कोठे चावल और गेहूँ से ठसाठस भरे हुए हैं। उसी की ठोस तरी उनका

दिल खोले हुए हैं। मेज़ों पर चीनी की तश्तरियों में एक से बढ़कर एक मिठाइयाँ, मेवे और फल सजे हुए हैं। मधुर स्वरों में बैण्ड बज रहा है। मित्रों का आना शुरू हो गया है।

पहला मित्र—बधाई सेठ जी!

दूसरा मित्र—लड़का मुबारक हो सेठ जी।

सेठजी—धन्यवाद धन्यवाद। आप लोगों को भी बधाई। आइये-आइये विराजिये।

तीसरा मित्र—बधाई सेठजी! (तश्तरियों की तरफ़ इशारा करते हुए) आपने तो बड़े ठाट कर रक्खे हैं।

सेठजी—अजी आप भी क्या लज्जित करते हैं! महगाई के कारण कुछ प्रबन्ध ही नहीं कर सका हूँ। जो कुछ रूखा-सूखा हो सका है सेवा में प्रस्तुत है।

दूसरा मित्र—यह रूखे-सूखे की एक ही कही।

पहला मित्र—मँहगाई का असर जिस पर होगा उस पर होगा सेठजी, आप तक तो उसकी हवा भी नहीं आती होगी।

तीसरा मित्र—तभी तो। आज यारों की पाँचों घी में हैं।

दूसरा मित्र—और सिर कढ़ाई में।

तीसरा मित्र—सच तो यह है कि आज-कल के दिनों में इतने अधिक लोगों को ऐसी बढ़िया-बढ़िया चीज़ें कोई नहीं खिला सकता।

पहला मित्र—यह तो सेठजी का ही दम था जो ऐसे वक्त ये भी रंग गाँठ दिया, वर्ना आज कल तो लोगों को खाने के लाले पड़ रहे हैं।

पहला मित्र—हर चीज़ चुनिन्दा है, शक्ल से ही मालूम होता है कि चीज़ें सब पेटेन्ट जगहों से आई हैं, रसगुल्ले के० सी० दास के यहाँ के मालूम होते हैं, परवल का मुरब्बा जोड़ा साखू का और आइसक्रीम की तरह मालूम होते हैं।

सेठजी—अब रहने भी दीजिये, बहुत बखान हो चुका। चलिये विराजिये चलके, और लोग भी आ गये हैं।

(सब मित्र बैठते हैं। खाना शुरू करना ही चाहते है कि बहुत ज़ोरों का शोर सुनाई देता है।—'हमें भी खाने को दो,' 'हमें भी खाने को दो,' 'हम भूखों मर रहे हैं।' भीड़ अन्दर घुस आती है, जिसमें ज्यादातर लोग ऐसे हैं जिनके पेट पीठ से लगे हुए हैं, शरीर पर चमड़ा है और हड्डियाँ। मांस का कहीं नाम भी नहीं है। सब अन्दर आकर चिल्लाते हैं—'हम भूखों मरें औ तुम मिठाइयें उड़ाओ, यह नहीं हो सकता। हमें भी खाने को दो।'

सेठजी—(चिल्लाते हैं) यह क्या बदतमीजी है! तुम लोग बिना इजाज़त घर में कैसे घुस आये ? रामखेलावन, बनवारी, गिरधर।

(सब नौकर सामने आकर खड़े हो जाते हैं)

सेठजी—खाली हाथ क्यों चले आये ? लाठी लाओ और इन लोगों को मार कर बाहर निकाल दो।

नौकर—'अभी लाये हुजूर'—कहकर अन्दर चले जाते हैं।

सेठजी—देख लिया तुम लोगों ने ? अब अगर अपनी खैरियत चाहते हो तो यहाँ से फ़ौरन निकल जाओ।

अनिल—खैरियत की हमें जरा भी जरूरत नहीं है। हमें तो खाना चाहिये।

भीड़—हमें खाना दो, हम भूखे हैं।

सेठजी—भूखे हो तो हम क्या करें। जाओ सरकारी ढाबों से जाकर खाना लो। यहाँ क्या खैरात बटता है ?

भीड़—हमें खाने को दो, बिना खाये हम न जाएँगे।

सेठजी—यह अच्छी जबर्दस्ती है।

अनिल—खाना मांगना जबर्दस्ती है, या खुद मिठाइयाँ खाना और दूसरों को एक मुट्ठी भात भी न देना जबर्दस्ती है।

सेठजी—तुम लोग क्या मार खाये बिना न हटोगे ?

अनिल—हम मार खाकर भी न हटेंगे। हम खाना खाकर ही हटेंगे। हमें खाने को दो।

भीड़—हम भूखे हैं, हमें खाने को दो।

सेठ जी—गिरधर, बनवारी, रामखेलावन, और नौकरों को भी बुला लो और मारो इन पाजियों को।

सब नौकर दौड़ते हैं और भीड़ पर लाठियाँ बरसाना शुरू कर देते हैं, यह देख कर भीड़ मिठाइयों पर टूट पड़ती है! उसे बहुत बेसब्री है वह वहीं खाने लगता है। डंडे पड़ते जाते हैं और वे लोग खाने की चीज़ों की तरफ बढ़ते जाते हैं। जिसके हाथ जो लग जाता है वह वही लेकर भागता है।

अनिल मन ही मन सोचता है यह ठीक है, मार पड़ ही रही है तो आज कुछ हाथ लग सके उसे क्यों छोड़ा जाय। कई डंडे उसके लग चुके हैं, खून से लथपथ हो चुका है, वह भी झपट कर दो तश्तरियाँ उठा लेता है और भागता है। एक डंडा उसके सिर में और लगता है, लड़खड़ाता है फिर न जाने कौन शक्ति उसके पैरों में पंख लगा देती है। बस लालसा उसके हृदय में है कि अपने हाथ की मिठाई किसी प्रकार अपने हृदय के टुकड़े, अपने बच्चे तक पहुँचा सके। बस यही लालसा लिये वह भागा जा रहा है।

घर के बाहर ही वह ज़मीन पर गिर पड़ता है। काँखता हुआ, कराहता हुआ ज़मीन पर घिसिटते हुए वह अन्दर पहुँचने की कोशिश करता है, शक्ति बुझी-सी जा रही है। 'आह इसे किसी प्रकार अपने बच्चे तक पहुँच सकता।' किसी प्रकार वह अन्दर पहुँच जाता है।

चिल्लाता है—आ गया बेटा। आँखें खोलो तुम्हारे लिये खाने को लाया हूँ।

बच्चा अन्तिम हिचकी लेता है। अनिल उस दृश्य को देखकर बर्दाश्त नहीं कर पाता, चक्कर खा कर गिर पड़ता है, तश्तरी की मिठाई इधर-उधर फैल जाती है।



मलका

हठात्-से एक लाठी बसावन के सिर पर पड़ी। सारा कुर्ता खून में तराबोर हो गया। मारनेवाला अभी दूसरा हाथ साध ही रहा था कि वह उलटे पैर भागा और गनेशगंज में आकर ही दम लिया। 'मार डाला रे'—कहकर पान की दूकान के सामने पड़ी हुई खाट पर वह गिर पड़ा।

सूरज पास ही खड़ा हुआ सुक्खा से अपनी एक पुरानी भिड़न्त का वाक़या बयान कर रहा था; दौड़ा हुआ आया और बोला—'यह क्या हुआ दादा ?'

बसावन ने आँखें बन्द किये हुए ही कहा—'हुआ क्या, भाई तुम लोग तो आपस के शेर हो। अभी कोई तुम्हें ज़रा-सा कुछ कह दे तो ज़बान निकाल लेने को तैयार हो जाओगे, लेकिन तुम्हारे किसी हितू-ब्योहारी या पास-पड़ोसी को जुतियाया भी जाय, तो तुम्हारे कान पर जूँ तक न रेंगेगी।'

बसावन की हालत देख और यह सुनते ही सूरज की आँखें लाल हो गईं। सीना फुलाकर बोला—किसके डेढ़ हाथ का जिगरा है दादा, जो तुम्हारी तरफ़ नज़र उठाकर भी देखे ? मुझे बताओ तो यह किससे झगड़ा हुआ है ? तुम्हारे चरन छूकर कहता हूँ दादा, उस साले की हड्डी-पसली चूर न कर दूँ तो आज से सूरज न कहना।'

बसावन दर्द से व्याकुल था। आँखों के सामने अँधेरा छा रहा था और खून बराबर बहता जाता था। कराहकर बोला—'भैया मेरे, वह बिलोचिन आती है न, चक्कू बेचनेवाली, मैंने उससे कहा कि हमें चार फलवाला चक्कू चाहिए, मारपीट के लायक। बोली कि डेरे पर चलकर ले लो। वहाँ उसने उसके साढ़े चार रुपये सुनाये। अपने पास इतने दाम थे नहीं, कहा—'इतना महँगा नहीं लेंगे।' बोली—'लेना होगा।' हमने कहा—'कोई ज़बरदस्ती है; इतने दाम का नहीं लेंगे।' बस भैया, इतने में तम्बू से एक लम्ब-तड़ंग बुड्ढा निकल आया। बोला—'बिना लिये नहीं जाने देगा।' हमने कहा—जाते हैं, देखें क्या किये लेते हो। और जैसे ही मैंने पीठ फेरी, उसने वह तानकर लाठी मारी कि सिर भर्ता हो गया। जान लेकर बगटुट भागा। आख़िर क्या करता। तुम्हीं बताओ?'

'बिलोची साले की ऐसी-तैसी अभी जाकर देखता हूँ।'—सूरज ने कहा। वह लाठी लेकर ऐशबाग़ की तरफ़ भागा। उसको जाते देखकर सुक्खा, छैलू, मनिया और दुई भी साथ हो लिये। पीछे-पीछे बसावन भी घर से एक लाठी निकालकर कराहते हुए, उसके सहारे चला।

तम्बू के बाहर अभी बुड्ढा मचिया पर बैठा लाठी पर हाथ फेर रहा था। सूरज ने आव न देखा ताव, जाते ही उस पर लाठी तान दी। बुड्ढा बहादुर तो जरूर था, पर वैसा ही, जो लाठी लेकर ही आधी दुनिया को हारी हुई समझ लेते हैं। इधर सूरज खेले-खाये हुए था। जब बुड्ढे के सिर को ताककर सूरज ने वार किया तो वह दोनों हाथ से लाठी पकड़ कर सिर बचाने लगा। सूरज ने एक हाथ उसके सिर पर मारा और फिर उल्टा घुमाकर सन्नाटे से जो उसकी लाठी में नीचे से मारा तो लाठी बड़ी दूर उछलकर गिरी। सूरज ने तब उसके सिर में एक लाठी हच्च से मारी, बुड्ढा लड़खड़ाया। पीछे बसावन ने कहा—'एक और दे साले

को, बड़ा लठैत बना है।' ख़ाली हाथ बुड्ढा चिल्लाया और सूरज के एक टाँग पर पड़े वार ने उसे चित फेंक दिया।

बुड्ढे की आवाज़ सुनते ही छः-सात बिलोची लाठी लेकर निकल आये। अब छेलू, सुक्खा, मनिया और टूड़ै भी पिल पड़े; और दस मिनट के अन्दर ही किसी का मत्था फूटा और कोई कंधे की हड्डी सुहलाने लगा।

सूरज हाथ रोककर बसावन की तरफ़ देखने ही वाला था कि अब क्या राय है कि किसी ने पीछे से आकर उसकी कमर थाम ली। 'लेना'—कहकर उसके सब साथी हँस पड़े। ज़रा कंधा झुका सूरज ने पीछे हाथ कर, कमर पकड़ने वाले की गर्दन पकड़कर ज़ोर से ढोंक मारी। लेकिन उसका सिर सामने आते ही सूरज ने देखा कि वह एक तरुणी है और फ़ौरन् लाठी नीचे छोड़, उसे पंजों से दबाते हुए उसने हाथ फैलाकर उस तरुणी को हाथों पर ही रोक लिया। उसे उतनी ही फ़ुरती से अलग खड़ी करके सूरज ने जरा परेशानी से कहा—'क्या है ?'

'तुम हमारे बाबा को काहे मारा'—कहकर उसने फिर किटकिटाकर सूरज के दोनों हाथ पकड़ लिये।

सूरज ने उसे झिटकाकर कहा—'दूर से बात नहीं करती है ?'

बूढ़ा बिलोची बोला—'इधर आ मलका...। अरे बाबा अब तुम लोग जाता क्यों नहीं ? इतना तो मारा, अब क्या किसी की जान लेगा ?'

बसावन ने कहा—'तुमने पहले झगड़ा करके मेरे चोट मारी है, दवा का रुपया लिये बिना नहीं जायँगे।'

एक अधेड़ बिलोची, जिसकी नीली मख़मली जाकेट मत्थे की चोट के कारण ख़ून से लथपथ हो रही थी, जेब में हाथ डालकर बोला—'रूपी भी लो बाबा, तुम शहज़ोर है। तुम मारा, उसका तो कोई बात ही नहीं।'

असावन हाथ फैलाने ही वाला था कि सूरज ने कहा—'यह नहीं होगा। चलो दादा, मार का जवाब मार से दे दिया, रुपये-पैसे का क्या सवाल है ?'

× × ×

भैरों पानवाला बैठा गुनगुना रहा था—'राजा ने मारी कटारी, हो राम !' और 'सामने पड़ी हुई कुर्सी पर बैठा सूरज बीड़ी के धुएँ में ब्राह्मणों के आडम्बर को फूँकता हुआ सोच रहा था, सवेरे के उसी गोल और लाल-लाल चेहरे के बारे में। क्रोध से उसकी खिंची हुई भौंहें, तमतमाया हुआ मुँह और उसका कहना—'तुम हमारे बाबा को काहे मारा,' उसके सामने उस अविनश्वर कलात्मक चित्रपट की भाँति बार-बार आना जो देखने-सुनने में सदा मोहक है।

इसी समय सामने की तरफ़ देखा तो सिर में पट्टी बाँधे वही बुड्ढा अपनी लड़की के साथ चला आ रहा है। सूरज ने ग़ौर से देखा, मिठाईवाले की दूकान की बिजली की रोशनी उसके मुँह पर पड़ी और चेहरा जैसे दुगनी द्युति से कौंध उठा। सूरज ने जैसे उस छवि का एक आकार-सा अपने मस्तिष्क में बना लेना चाहा। उसका मन हुआ कि एक बार बुड्ढे से जाकर सवेरे की मारपीट पर अफ़सोस ज़ाहिर करे; लेकिन फिर कुछ सोचकर चुप बैठ रहा। इतने में सुना, बाबू !' सिर उठाकर देखा, थोड़ी ही दूर पर खड़ा वही बुड्ढा बुला रहा था।

उसने जेब में हाथ डालकर करौली के हैन्डिल पर हाथ रखकर कहा—'क्या है ?'

बुड्ढे ने कहा—'ज़रा बाजू को आओ।'

भैरों ने ज़रा खाँसकर कहा—'अब जाते क्यों नहीं ? वह बुलाने आई है।'

सूरज ने आँखें निकालकर कहा—'क्यों बे साले, रोटियाँ लग गई हैं क्या ? दिन भर शोहदई सूझती है ।'

भैंगे की सिट्टी-पिट्टी भूल गई । चुपचाप सिर नीचा कर पान लगाने लगा । सूरज ने बुड्ढे की तरफ़ देखकर कहा—'क्या बात है ?'

बुड्ढे ने कहा—'इधर चले आओ, धोखा नहीं करेगा । बिल्लोची धोखा नहीं करता । कुछ आपस का बात है ।'

एक एकान्त जगह में खड़े होकर बुड्ढे ने कहा—'बाबू तुम बड़ा बहादुर है, तुमसे हमारा तबियत बहुत खुश हुआ । हम लोग बहादुर का बड़ा इज्जत करता है ।'

'मतलब की बात कहो ।'—सूरज ने लापरवाही दिखाते हुए कहा ।

बूढ़े की आँखों में स्निग्ध छाया झलक रही थी, सूरज की पीठ पर धीरे से हाथ रखकर बोला—'मतलब कुछ नहीं बाबू । हम बहादुर, तुम भी बहादुर—बहादुर बहादुर की क़दर करता है ।'

बुड्ढा मुस्कराया । सूरज चुपचाप खड़ा रहा । बीच में, दो-एक बार उसने कनखियों से मलका की तरफ़ देखा भी ।

बूढ़े ने नज़र घुमाकर एक बार मलका की ओर देखा, मुसकराया फिर बोला—'हमारा लड़की भी बड़ा बहादुर है । उसने सवेरे तुम्हें हरा दिया बाबू ।'

सूरज ने कुछ अकड़ के साथ हँसकर जवाब दिया—'हाँ, लपेट तो मार ही दी थी ।'

फिर मलका को मदभरी आँखों से इस तरह देखने लगा, जैसे कोई ख़ास बात कह दी हो ।

मलका लज्जित-सी खड़ी थी ।

बूढ़े बिल्लोची के रूखे झुर्रीदार चेहरे पर एक क्षण के लिये जवानी की रवानी झलकी । बड़े प्रेम से एक बार अपनी लड़की की तरफ देख

फिर सूरज की बाँह पकड़कर बोला—'तुम मुसलमान होता, बाबू, तो हमें अपनी मलका को तुम्हें शादी में दे देता।'

सूरज ने मज़ाक में ही कहा—'और अब क्या न ब्याहोगे?'

बूढ़ा यह सुन चौंका, आश्चर्य के साथ उसकी ओर देखकर बोला—'तुम शादी करेगा? बोलो, मरद का ज़बान एक।'

बिल्लोची का यह उत्साह देख, सूरज चौंका। सहसा उसे अपने तीन दफ़ा संध्या-पूजा करानेवाले कर्मकाण्डी पिता की याद आई।

बूढ़ा बोला—'राज़ी है?'

सूरज ने मलका की ओर स्निग्ध-दृष्टि से ताक, जैसे अपनी आंतरिक और बाह्य सब शक्तियों के विरुद्ध ज़ोर लगाकर कहा—'कल बताऊँगा।'

× × ×

किसी की आवाज़ से सूरज की नींद खुली। बाहर आकर देखा मोटर में मदन बैठा है—'सुनिए, पण्डित जी ने आपको बुलाया है। अभी मोटर से आपको बाराबंकी के आगे छेदापसारी-पोलिंग बूथ पर उनका एजेन्ट बनकर जाना है। वहाँ रानी साहिबा के आदमी झगड़ा फ़साद करनेवाले हैं।'

सूरज सोचने लगा—'किसी का काम एक दफ़ा कर दो, बस, फिर जब देखो तब सिर पर सवार हैं। बड़े आदमी वैसे तो हमें गुण्डा कहकर अपने पास बिठाते भी घिनाते हैं, लेकिन वक्त पर हमारी ही सरन में दौड़ते हैं। आज मुझे बुड्ढे को जवाब देना था। काम भी मौक़ा देखकर नहीं आता है। अच्छा, चलो भाई।'

मोटर चल दी।

× × ×

दूकान के अन्दर दूध की बाल्टी में पानी मिलाता हुआ दुई

गुनगुनाता जाता था—'राधा रानी श्याम से गोदावैं लागीं गोदना।' तभी बल्लम का कोना उसकी पीठ में लगाते हुये सूरज ने कहा—'क्यों बे, वे बिल्लोची कहाँ गये ?'

बुड्ढे ने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए कहा—'मैंने कुछ नहीं किया है भैया, वे बसावन और भैरों वहाँ जा-जाकर आवाज़ें कसते थे, इसी लिये वे लोग भाग गये।'

उस दिन बसावन और भैरों को बेहद मारने के बाद सूरज अमीनाबाद से एक गोदनेवाले को बुला लाया और ठीक अपने दिल के ऊपर बढ़िया हरफ़ों में गुदवाया—'मलका'। उसे दाम देकर विदा किया और खाट पर अनमना-सा पड़ रहा।

× × ×

सूरज के विषय में अगर पूछा जाय कि वह कौन है तो इसका ठीक जवाब यह है कि चार रोज़ पहले उससे मुलाकात या दोस्ती करनेवालों से पुलीसवाले भी दोस्ती पैदा करने की कोशिश करने लगते थे। उसके बाप की घी की दूकान और बिस्कुट-फैक्टरी की सारी कमाई कभी पिस्तौल पकड़े जाने में, कभी मार-पीट के मुक़दमों में ही नष्ट हो गई। अब जब से काँग्रेस गवर्नमेंट हो गई है, ज़रा चैन है, पर अब पैसे-पैसे की तंगी है।

इस वक्त बुड्ढा बाप आख़िरी रोटी सेंक रहा था और सूरज बटुई से दाल परस रहा था। बुड्ढे ने घी न होने की बात सोचते हुए ज़रा नर्मी से कहा—'सूरज बेटा, अब तो तू कहीं नौकरी कर ले। इस तरह तो काम नहीं चलता दिखाई देता।'

सदा से विपरीत पिता के स्वर में कोमलता देखकर सूरज बोला—'कहीं मिले तब ना।'

'नौकरी तो है, पर तू करना ही नहीं चाहता।'

'कहाँ ?'

'फ़ौज में आजकल कितनी भर्ती हो रही है। तू मेजर के नाम रफ़ी साहब से चिट्ठी लिखवा ले तो सीधा नायक रैंक में भर्ती हो जायगा।'

'फ़ौज में नौकरी!'—सूरज ने ज़रा धीमे स्वर से कहा।

'क्यों फ़ौज में नौकरी करने में क्या हुआ? अब तो अपनी सरकार हो गई है, अपने हक़-हकूक़ बढ़ रहे हैं, अब तो सभी जगह पैठ करना चाहिए। चार दिन में सब हमीं लोगों को तो सम्हालना है।'

सूरज ने गंभीरता पूर्वक इस बात पर ग़ौर कर कहा—अच्छा।"

× × ×

खैबर दर्रे में मिचनीकाण्डो और तुरखाम के बीच फ़ौजी सिपाहियों की एक टुकड़ी रेल की पटरी निकालने के कुछ सामान की रखवाली कर रही थी। एक सिपाही कह रह था—'मैं तो कहता हूँ सूरज, कि एक बार पचास हज़ार सिपाही सरहद में छोड़ दिया जाय, और इन सरहदियों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर मारा जाय। अब देखो तभी एक न एक आफ़त जोते रहते हैं, साले।'

सूरज ज़रा टहलते हुए कुछ आगे निकल गया था, बोला—'कहते ठीक हो, मगर—

इसी वक्त सनसनाता हुआ कुछ आकर उसकी बन्दूक़ में खट-से लगा। सूरज ने झुककर देखा। कागज में लिपटा हुआ एक पत्थर था। काग़ज़ उर्दू में लिखा हुआ था—'रात को नौ बजे सामनेवाले टीले पर मिलो'—मलका। सूरज का जैसे घाव ताज़ा हो गया। मलका यहाँ कैसे आ गई—घण्टों यही सोचता रहा। फिर बोला—खैर, मलका के नाम पर ही सही।

ड्यूटी से 'आफ़' हो गया था। नौ बजते-बजते अपना ओवरकोट ठीक से ओढ़कर टीले की तरफ़ चला। हवा जैसे बदन को छेदे डालती थी, और बरफ़ का भूसा-सा उड़-उड़कर कोट पर जम रहा था। फिर भी

ओर अँधेरे में टार्च के सहारे सूरज बढ़ता चला जा रहा था। तम्बू से तो टीला बहुत पास मालूम होता था, पर चलते-चलते पैर भर आये। कहीं किसी झाड़ी या पेड़ का नाम नहीं। दूर-दूर तक पथरीली ऊँची-नीची ज़मीन—परिन्दे और जानवर तो कहीं ढूढ़े न मिले।

राम-राम करके सूरज ने देखा—पत्थर के ऊँचे से टीले पर कोई बैठा है। टार्च जलाकर देखा वाक़ई मलका थी।

'मलका तुम यहाँ कैसे?' सूरज ने उसके दोनों हाथ पकड़कर कहा।

'अफ़रीदियों का एक झुण्ड एक रोज़ रात को हमारे गाँव में घुस आया था। वही मुझे ज़बरदस्ती उठा लाया। अब मैं यहाँ एक सरदार की बीबी हूँ।'

'तो तुम्हारी शादी हो गई और अब मिल्लोचिन नहीं, अफ़रीदिन हो?'—सूरज ने उतरे मन से कहा।

'अफरीदिन ही नहीं, एक अफरीदी बच्चे की माँ भी।'—मलका बोली, 'क्यों जी तुम लोग लौट क्यों नहीं जाते? बेकार पड़े हो।'

'जब तक पूरी रेल नहीं निकल जाती, कैसे लौट जायँ?'

'ये तो हमारे लोग दो घंटे में खोदकर फेंक देंगे, इसकी तुम कब तक रखवाली करोगे?'

सूरज ने कहा—'क्या यही कहने को बुलाया था?'

'नहीं कहना तो बहुत कुछ था।'

'तो वही कहो।'

'तुम बड़े धोखेबाज़ निकले।'—मलका ने तेवर बदलकर कहा।

'मैं?—धोखेबाज़।'

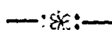
'हाँ तुम, वादा करके ग़ायब हो गये। मेरा कितने दिन दिल जलता रहा है और आज आये भी तो मेरे मुल्क की ओर बन्दूक़ तानकर। धोखेबाज़ काफ़िर।'

सूरज ने कहा—'तुम स्त्री हो मलका वरना—।' और तम्बू की तरफ़ चल दिया। चलते हुए बोला—'इतना जाने रहो कि मैंने तुम्हें धोखा नहीं दिया और यहाँ आने की जो कहा तो यह अपना फ़र्ज़ है। मुल्क के लिये सब कुछ करना जायज़ होता है।'

'मुल्क के लिये सब कुछ करना जायज़ होता है?'—मलका ने तेज़ आवाज़ में पूछा।

सूरज ने पलटकर कहा—'हाँ।'

'तो लो'—और एक चमचमाता हुआ छुरा सन-से आकर सूरज के ठीक उसी स्थान पर घुस गया, जहाँ गुदा था—मलका।



'अरमानों की समाधि'

चम्मो का लड़का मर गया मामू'-हरिहर ने नाँपाल में आते हुए कहा, 'या अल्लाह, ग़रीब बेवा का एक सहारा था वह भी न रहा। मेरी राय मानो तो अब तुम लोग उस पर तरस खाओ, उसके गुनाहों पर मट्टी डालो और मुर्दनी में चलकर शरीक हो जाओ। आर्द्र कंठ से काज़िम मियाँ बोले।

'कैसी बातें करते हो तुम काज़िम भाई' मुखिया ने रोबदाब से कहा—'यही तो वक़्त है जब उस वेहया औरत को अपनी करनी पर पश्चात्ताप होगा जब उसे मालूम होगा कि समाज के नियमों को ठुकराने का क्या मज़ा मिलता है। अगर हम लोग इसी तरह ढील देते जायेंगे तो आज जो उसने किया है कल वही हमारे तुम्हारे घर की लड़कियाँ करेंगी।'

'बड़ी मुसीबत आ पड़ी ग़रीब पर, इसलिये मैंने कहा' काज़िम भाई आजिजी से बोले—'पहले खाविन्द न रहा और उसकी सारी उम्मीदों का चिराग़ भी बुझ गया। उसकी हालत रहम के काबिल है।'

'हरगिज़ नहीं—' मुखिया कड़क कर बोला क्यों उसने सब लोगों की बात न सुनी? क्या ब्राह्मणों में कोई लड़का न था, या उस माधो के सुरख़ाब का पर लगा था जो यह बदमाश पूरी जात छोड़कर उस ठाकुर के बच्चे के यहाँ बैठ गई बड़ा मोहब्बत का जोश चढ़ा था। अरे सब पर जवानी आती है, मगर सब लोग ऐसा ही करने लगें तो

सूरज ने कहा—'तुम स्त्री हो मलका व
चल दिया। चलते हुए बोला—'इतना जाने
नहीं दिया और यहाँ आने की जो कहा तो यह
के लिये सब कुछ करना जायज़ होता है।'

'मुल्क के लिये सब कुछ करना जायज़ होत
आवाज़ में पूछा।

सूरज ने पलटकर कहा—'हाँ।'

'तो लो'—और एक चमचमाता हुआ छुरा
ठीक उसी स्थान पर घुस गया, जहाँ गुदा था—।

—:※:—

मय हो गया था। अपने उस लाल को मट्टी बन जाते देख कर वह बैठी जरूर रह गई थी पर क्या उसकी हार्दिक इच्छा यह न थी कि उसके प्राण निकल जाते और वह यह दुखद दृश्य न देख सकती। उसके प्राणों को भी लेकर यदि उसका बच्चा जिलाया जा सकता तो वह हँसते २ दे देती, यह क्या कहने की बात है।

चम्मो बच्चे की मट्टी को कलेजे से लगाये बैठी थी, उसके रुदन से सारा वायुमंडल गूँज रहा था, माँओं के हृदय अन्दर ही अन्दर घुटे जा रहे थे, पर किसी का यह साहस न था कि जाकर उस दुखिया से सहानुभूति के दो शब्द कहती। चम्मो का हृदय दुख से विभोर था पर उसके स्मृति पट पर पुराने चित्र आ रहे थे जब वह चम्मो नहीं चमेली थी। सचमुच की चमेली की भाँति कोमल सुरभिमय और नयनाभिराम। जब गाँव का प्रत्येक युवक उसकी चितवन का मोहताज था, जब हर हृदय वाला उसके रास्ते में अपनी आँखें बिछाता था। फिर आँखों के सामने आ गया वृषभ वर काँधे और विशाल बाहु वाला माधव जिसे चम्मो ने सारी कस्बे की सीखों को ठुकराते हुए गले का हार बनाया था और जिसके रहते हुए किसी माई के लाल की हिम्मत उसकी तरफ नज़र उठाकर देखने की न पड़ती थी। जिस माधव ने उसके जीवन को अनुराग के रंग में रंग दिया था और जिसे पाकर उसके दिन सोने और रातें चाँदी की बन गई थीं। फिर वह दिन याद आया जब माधव भी उसे छोड़कर चल बसा था और माधव के न रहने पर लाल को देखकर ही उसने अपने दिल को धीरज बँधाया था पर आज वह क्या करे? आज तो उसकी नाव अथाह सागर में पड़ी हुई दिखलाई दे रही थी।

दोपहर में बच्चा मरा था एक पहर से ऊपर चम्मो को रोते-चिल्लाते हो गया था, पर इस गाँव में एक भी ऐसा मनुष्य न था जो इस भेड़ों

दुनियाँ क्यों कर चले ? यों लड़कपन में गल्ती किससे नहीं हो जाती मगर उससे कोई बड़े बूढ़ों के सिर पर ठोकर मारकर उस पर मोहर थोड़े ही लगाता घूमता है।

'मगर उसका बच्चा...' काज़िम भाई ने डरते डरते कहा। वे हालाँ कि बुजुर्ग आदमी थे हर मामले में उनकी राय ली व मानी जाती थी पर पंचों के खिलाफ़ जाने की तो उनकी भी हिम्मत न थी। चम्मो को दी हुई सज़ा को उनका दिल न क़बूल करता था इसलिये वे बहुत दबते दबते अपनी बात कहे जाते थे।

'बच्चा मर गया तो कौन दुनियाँ उलट गई ? कौन अनोखी बात हो गयी ? अच्छा हुआ साँप का बच्चा न रहा बड़ा होता तो किसी न किसी को डसता है। वह भी अपने बाप की तरह किसी पर डोरे डालता किसी घर की इज्जत ख़ाक में मिलाता। तुम तो ऐसे परेशान हो गोया क़यामत आ गयी। क्या किसी का बच्चा कभी मरता नहीं !'

मगर बात चम्मो के लिए इतनी साधारण न थी। यों दुनियाँ में बच्चे रोज़ मरा ही करते हैं और अगर सारी दुनियाँ की तादाद पर ग़ौर किया जाय तो चम्मो के उस कस्बे की आबादी से, रोज़ मरने वाले बच्चों की तादाद कई गुनी होगी। पर उस चम्मो के दिल से पूछो उस माँ से पूछो जिसका एकलौता बेटा उससे छिन गया हो, जिसके स्वर्गीय पति की एक मात्र निशानी उससे लूट ली गई हो। जिसके घर का अकेला चिराग़ बुझ गया हो। दूसरों के मरने की, दूसरों के बच्चों के मरने की बात सुनकर हमें अफ़सोस होता है मगर उसी मात्रा तक जिसे दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं—हमें यह अच्छा नहीं लगता पर माँ का हृदय ? टुकड़े टुकड़े हो जाता है—टुकड़े टुकड़े हो जाने के माने यह नहीं है कि बहुत दुख होता है बल्कि वास्तव में उसका दिल चाक-चाक हो जाता है। चम्मो की दुनियाँ लुट गई थी भविष्य अन्धकार-

मय हो गया था। अपने उस लाल को मट्टी बन जाते देख कर वह बैठी जरूर रह गई थी पर क्या उसकी हार्दिक इच्छा यह न थी कि उसके प्राण निकल जाते और वह यह दुखद दृश्य न देख सकती। उसके प्राणों को भी लेकर यदि उसका बच्चा जिलाया जा सकता तो वह हँसते २ दे देती, यह क्या कहने की बात है।

चम्मो बच्चे की मट्टी को कलेजे से लगाये बैठी थी, उसके रुदन से सारा वायुमंडल गूँज रहा था, माँओं के हृदय अन्दर ही अन्दर घुटे जा रहे थे, पर किसी का यह साहस न था कि जाकर उस दुखिया से सहानुभूति के दो शब्द कहती। चम्मो का हृदय दुख से विभोर था पर उसके स्मृति पट पर पुराने चित्र आ रहे थे जब वह चम्मो नहीं चमेली थी। सचमुच की चमेली की भाँति कोमल सुगंधिमय और नयनाभिराम। जब गाँव का प्रत्येक युवक उसकी चितवन का मोहताज था, जब हर हृदय वाला उसके रास्ते में अपनी आँखें बिछाता था। फिर आँखों के सामने आ गया वृषभ वर काँधे और विशाल बाहु वाला माधव जिसे चम्मो ने सारी कस्बे की सीओं को ठुकराते हुए गले का हार बनाया था और जिसके रहते हुए किसी माई के लाल की हिम्मत उसकी तरफ नज़र उठाकर देखने की न पड़ती थी। जिस माधव ने उसके जीवन को अनुराग के रंग में रंग दिया था और जिसे पाकर उसके दिन सोने और रातें चाँदी की बन गई थीं। फिर वह दिन याद आया जब माधव भी उसे छोड़कर चल बसा था और माधव के न रहने पर लाल को देखकर ही उसने अपने दिल को धीरज बँधाया था पर आज वह क्या करे? आज तो उसकी नाव अथाह सागर में पड़ी हुई दिखलाई दे रही थी।

दोपहर में बच्चा मरा था एक पहर से ऊपर चम्मो को रोते-चिल्लाते हो गया था, पर इस गाँव में एक भी ऐसा मनुष्य न था जो इस भेड़ों

के झुण्ड से अलग निकल कर आता और इस अनाथ अबला के आँसू पोंछता। इतनी अवहेलना, इतनी कठोरता की आशा चम्मो ने कभी न की थी।

आखिर जो माँ बच्चे को मरते देखकर व्याकुल हो जाती है, पागल हो जाती है, अपना सिर पीट लेती है, उसी चम्मो को परिस्थितियों ने, समय ने स्वयं धीरज बँधवाया छाती पर पत्थर रखना सिखलाया। उसने सोचा अब चलना चाहिये जो कुछ करना है मुझे ही करना है। कफ़न का कपड़ा ले आऊँ और लपेटकर अपने लाल के साथ अपना आखिरी कर्त्तव्य भी पालन कर डालूँ, पर लाल को यहाँ किसके भरोसे छोड़ जाऊँगी, साथ ही लेती चलूँ।

लाल की मिट्टी को लिये हुए वह उठी। आह! वे चञ्चल हाथ पैर जो हमेशा हवा में उठे क्रीड़ा करते थे आज लुञ्ज पुञ्ज हो गये थे। जिन आँखों की चमक देखकर उसका रोम रोम खिल जाता था वे सदा के लिये मुँद चुकी थीं। उसे आँचल में लपेटे वह चली और कस्बे के बजाजे में आई। पहली दूकान की सीढ़ियों के पास खड़ी होकर उसने कहा—'मोहन चाचा, मेरा लाल चल बसा, एक गज लट्ठा मुझे दे दो।'

'कपड़ा है कहाँ भाई! एक गिरह कपड़ा दुकान में नहीं है'—मोहन बोला? 'मेरे चाचा, जो दाम चाहो ले लो, एक गज कपड़ा मुझे दे दो।'

'कैसी बातें करती है तू, कपड़ा है ही नहीं तो क्या पैदा करूँ?'

दूसरी दूकान पर पहुँची, हाथ जोड़े, घिघियाई पर उत्तर वही मिला 'पागल हो गई है क्या? कपड़ा बजाजे में है कहाँ? अभी उस दिन पटवारी का भाञ्जा मरा था तो पुरानी धोती में लपेट कर ले जाया

गया था बेचारा, और तुझे कपड़ा चाहिये। कहीं देखने को मिल रहा है कपड़ा।'

पण्डित रामदीन उसे देखते ही दूर से चिल्लाये—'मुर्दा लेकर यहाँ न आना। कपड़ा मेरे यहाँ एक बित्ता भर भी नहीं है चाहे जिसकी कसम ले ले।'

सब दूकानों से उसे यही उत्तर मिला। कपड़ा वाक़ई में सपना हो गया था। निकलता था तो या तो पुलिस या ज़मींदार के जूते पर या रात में एक के दस लेकर चोर बाज़ार में। ग़रीब बेक़फ़न ही उठ रहे थे। पर चम्मो का दिल कैसे मानता, आह! वह अपने लाल को क़फ़न के एक टुकड़े में नहीं लपेट सकती। उसके अरमानों का वह आशा दीप बेक़फ़न दुनियाँ से जायगा। वह अपनी बेबसी पर रो पड़ी। उसे याद आया वह दिन जब उसकी माँ को मरने के बाद ज़री का दुशाला ओढ़ाया गया था। बाज़ार से निकलते समय उसके रोम रोम ने चिल्ला कर कहा—'अरे बेइमानों, यह बेदर्दी से जोड़ी हुई दौलत न रहेगी, कौड़ी कौड़ी को मोहताज़ न हो तो कहना। वह दिन जल्दी ही आवे जब तुम्हारे बच्चे भी बेक़फ़न उठें, जिससे तुम्हें मेरे दिल की कसक का अन्दाज़ा हो।'

मगर यह सब बातें बेकार थीं, माँ के दिल की निकली वह आह हवा में समा गई, कभी किसी का उससे बाल भी न बाँका हुआ। 'कबिरा हाय गरीब की कबहुँ न खाली जाय'—वाली कहावत झूँटी पड़ चुकी, अब हाय का कोई असर नहीं पड़ता।

चम्मो लाल को वैसे ही लेकर चल पड़ी। उसका दिल मसोस रहा था। आह! आज उसका राजा माधो होता तो उसको यह क्यों करना पड़ता, वह तो अकेला ही इस पूरे गाँव के मुर्दों को ढोकर मसान तक पहुँचा आता, और क्या पहुँचा नहीं आया था? पिछले ताउन

(प्लेग) में उसने किस घर के दो एक मुर्दे नहीं ढोये थे और यह सब ऐसे कृतघ्न हैं कि उसी के बच्चे को हाथ लगाना पाप समझते हैं। उस शेर के जीते जी इन सियारों की हिम्मत न पड़ी थी उसका बहिष्कार करने की, अब दुश्मनी निकाल रहे हैं, कायर कहीं के।

वह आगे बढ़ती जाती थी और श्मशान जैसे पीछे हटता जाता था। पाँव उसके मन मन भर के हो रहे थे और उसका वह कोमल कुसुम बच्चा आज उसके लाख नहीं करते करते मन को भारी लग रहा था। माँ अपने बच्चे को कभी बोझीला मानने को तैयार नहीं होती, दूसरे के कहने पर नज़र लग जाने के भय से काँप उठती है, लड़ने को तैयार हो जाती है पर आज तो उसके हाथ जवाब दिये जा रहे थे। फिर भी वह मानने को तैयार न थी, जैसे आज भी बच्चे के नज़र लग जाने का भय उसे था।

जैसे तैसे श्मशान आया तो चम्मो अपने बच्चे को उढ़ाने के लिये अपनी उस फटी पुरानी अकेली धोती से एक टुकड़ा फाड़ने को बैठी जो मुश्किल से उसकी लज्जा ढक पा रही थी, जिसका एक एक अलग तार जैसे चिल्ला चिल्लाकर यह कह रहा था कि उसने बहुत दिनों सेवा की अब उसे छुट्टी मिलनी चाहिये। चम्मो ने वह टुकड़ा फाड़ लिया। सुनते हैं शैब्या ने जब श्मशान में क़फ़न फाड़ा था तो पृथ्वी हिलने लगी थी, लोकमात्र काँपने लगे थे, साक्षात विष्णु भगवान् प्रगट हुए थे पर ऐसा कुछ न हुआ। गरीब चम्मो की मदद को कोई न आया। कहाँ रानी शैब्या और कहाँ अदना सेवा चम्मो।

चम्मो ने अपने लाल को उस फटे पुराने टुकड़े में लपेट लिया। वह अब भी तो वैसा ही प्यारा लग रहा था, गेंदापत्ते के बबुए सा। उसकी आकृति में कोई खराबी न आई थी और उसका वह कुन्दन सा वर्ण अब भी उस फटे टुकड़े के छेदों में से चमक रहा था। कहाँ

से दिल लायगी वह जो इस अम्लान कुसुम को मिट्टी में लिटा देगी।

चम्मो को देखते ही कब्र खोदने वाला उठा बच्चे के आकार पर एक नज़र उसने डाली और सिर झुकाकर उसी निर्विकार भाव से गड्ढा खोदने लगा जैसे नये मकान के लिए नींव खोद रहा हो।

चम्मो का हृदय मथता रहा। कैसी साज सम्हाल इस बच्चे की उसने की थी। एक क्षण को उसे गीले में न पड़ने दिया था, उसे सूखे में करके खुद गीले में पड़ी थी। अपने मकान का एक एक छेद जाड़े में बच्चे के सर्दी खा जाने के भय से बन्द कर दिया था। ज़रा-ज़रा सी चीज़ को उनका मन मचल कर रह गया था पर बच्चे के नुक्सान के भय से वह हर बदपरहेज़ी से बची थी। गाँव में दवा न मिलने पर दो दो चार चार कोस उसके लिये दवा लेने चली गयी थी। इतना सब उसने किया था, क्या इसी दिन के लिये ?

गड्ढा खोदकर मज़दूर बोला—'ले आओ भाई।'

यह आवाहन उस कार्य के लिए था जो उसके लिए आग में कूदने से ज्यादा कठिन था। उसे सुनकर उसके रोएँ रोएँ से जैसे जान निकल गई वह निर्जीव सी बैठी रही।

कुछ देर रुककर मज़दूर फिर बोला—'ले आओ भाई, यह तो करना ही है।' चम्मो उठी और लाल को लेकर उस गड्ढे में उतर गई। फिर उसे याद आया इस बच्चे को वह सर्दी से कैसे बचाती रहती थी, ज्योतिषी ने उसके लिये चन्द्रमा बुरा बताया था, तभी से वह कैसी सतर्क रहती थी और आज वही उसे ठण्डी मिट्टी में लिटाने जा रही थी।

माँ ने न जाने कहाँ से वह दिल पाया, कहाँ से वह हाथ पाये जो अपने लाल को वह उस पाले सी ज़मीन पर लिटा सकी। उसे लिटाकर वह गड्ढे में ही खड़ी खड़ी सिसकती रही, ऐसा मालूम होता था जैसे

कलेजा बाहर निकलकर आ जायगा। मज़दूर के कई बार कहने पर वह बाहर आई।

मज़दूर बोला—'थोड़ी मिट्टी तुम डालदो।'

चम्मो ने दिल पर पत्थर रखकर वह भी किया। और उसके बाद मिट्टी डालदी गई—चम्मो के उस दिल के टुकड़े पर, आँखों की ज्योति पर, घर के उजाले पर, जिन्दगी के अरमानों पर। साथ ही साथ मिट्टी डाल दी गई उन गुनाहगारों के गुनाहों पर जो अपने मुँह की लाली के लिये दूसरों का खून चूँस लेते हैं, जो अपनी तिजोरियों को भरने के लिये दूसरों का जीना भारी किये हैं, जो अपने ऐशोआराम के लिये दूसरों की ज़रूरतें भी पूरी नहीं होने देते।

भैरवी

जैसे रस चूस लिया जाने पर, गँडेरी का बाकी हिस्सा फेंक देने के काबिल ही होता है, किसी मतलब का नहीं रहता, वैसे ही क्लर्की कर लेने पर आदमी के जीवन का रस सूख जाता है और वह किसी दूसरे के क्या अपने भी काम का भी नहीं रह जाता, यह गयादीन का विश्वास था। इसलिए अपने विद्यार्थी जीवन में ही उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि और चाहे जो कुछ करेंगे पर क्लर्की न करेंगे। शायद अपने इस निश्चय पर वह अटल भी रहते पर अभी हाईस्कूल पास करके इन्टरमीजियेट में नाम लिखाये उन्हें दो चार महीने ही हो पाये थे कि पिता जी चल बसे। वे दमे के पुराने मरीज थे। दमे के मरीज के बारे में यह कहा जाता है कि वह बहुत दिन घसिटता है पर पिताजी का शायद गयादीन को ही घसिटवाना मंजूर था सो उन्होंने जल्दी ही किनाराकशी कर ली। घर में विधवा माँ, एक छोटा भाई, एक बहन और नवविवाहिता पत्नी थी। आर्थिक स्थिति वही थी—रोज कुआँ खोदना रोज पानी पीना। पिता जी ने अपने डाक्टरी के पेशे में अच्छा कमाया था, पर खर्च उससे भी अच्छा किया था। उनका सिद्धान्त 'कौड़ी न रख कफ़न को' वाला था और इसका उन्होंने अक्षरशः पालन किया था। गयादीन ने जैसा खाया पहना और खर्च किया था वैसा बड़े बड़ों को नसीब नहीं होता पर उन पर यह कहावत घटित हुई—'मजे तुमने उठाये मुसीबत कौन झेलेगा?' इधर पिताजी मरे उधर उन पर

कमाने की फिक्र सवार हुई। हाई स्कूल पास को आखिर मिल कौन सी नौकरी सकती थी सिवाय क्लर्की के? हर अच्छे विभाग में बी० ए०, एम० ए० उम्मीदवार खड़े रहते थे। और तो और वह अध्यापक भी तो नहीं हो सकता था क्योंकि उसने ट्रेनिंग पास नहीं की थी। उन दिनों राशनिंग के दफ्तर खुल रहे थे गयादीन ने भी मजबूरन अर्जी दी, क्यों कि पेट को सिद्धान्तों से कोई मतलब नहीं, न वह किसी की पसन्द या नापसन्द का खयाल करता है, उसे तो खाने को चाहिए।

गयादीन शहर के अनाज के सेन्ट्रल गोडाउन में नियुक्त हो गये। उनका काम शहर के महाजनों को अनाज बाँटना था। अनाज तौला जाता बोरों में भरा जाता, आधा सेर फी बोरा छूट दी जाती सब काम गयादीन कायदे से किये जाते, न वह सरकार का नुकसान चाहते थे और न दूकानदारों का। सुबह नौ बजे से वह दफ्तर पहुँच जाते और दिन मुंदे वहाँ से चलते। उनकी मेहनत और ईमानदारी पर अफसर लोग दाँतों तले उँगली दबाते थे पर साथ में काम करने वाले जलते थे, क्योंकि उनकी वजह से उन्हें भी घिसना पड़ता था। हर अफसर यही कहता—तुम लोग काम चोर हो, गयादीन को देखो कैसे जुट कर काम करता है। उसे बस काम से मतलब है और किसी चीज से नहीं। हम लोग यह अच्छी तरह समझते हैं कि दफ्तर में अगर कायदे से काम होता जा रहा है तो वह गयादीन की ही बदौलत, अगर तुम लोगों की चले तो चार रोज में सब गड़बड़ घोटाला कर दो।

दफ्तर के सब बाबू मन ही मन गयादीन से जलते, क्यों कि वे यह समझते थे कि अगर कोई तरक्की का मौका आया तो वह जगह गयादीन के अलावा और किसी को न मिलेगी।

नई भर्ती होती जा रही थी। इन्हीं दिनों एक नवयुवक [illegible] गयादीन के प्रयत्न से ही दफ्तर में नियुक्त हुआ। गयादीन ने

अपना पड़ोसी का कर्तव्य निभाया था और गयादीन की बात अफसर लोग टाल न सकते थे। इकबाल उन चलते हुए नवयुवकों में से था जैसे आज कल स्कूल कालेजों में सरगना हुआ करते हैं। इतना जबरदस्त बातूनी था कि सारा दफ्तर दो ही दिनों में उनका मुरीद हो गया। दिन भर हँसना, हँसाना सबसे मुँह देखी बातों में उसे कमाल हासिल था। आठ दस आने की सिगरेट वह अपने साथ काम करने वालों को पिला देता। उसकी शाह खर्ची देखकर लोगों को यह मालूम होता गोया कोई बड़े घर का लड़का है, शौकिया नौकरी करने आ गया है।

दफ्तर के क्लर्क तक ही नहीं अफसर तक धीरे धीरे इकबाल बहादुर के कायल होने लगे। वह छुट्टियों में या आफिस के बाद उन लोगों के घर जाता और उनके बच्चों को साथ लेकर घुमाने चला जाता। लौटता तो बच्चों के हाथों में बिस्कुट, लेमनचूस के पैकेट या फल होते। अगर साहब कुछ कहते तो उनसे ऐसी मीठी लड़ाई लड़ता कि साहब को चुप ही हो जाना पड़ता। नौकरों से वह कहता मेम साहब से कहो अगर किसी चीज की ज़रूरत हो तो मुझ से कहें। मेरे रहते अगर किसी किस्म की तकलीफ उठाई गई तो मेरी ज़िन्दगी बेकार है। अगर कोई काम किसी और से कहा गया तो मैं समझूँगा कि हुजूर मुझे पराया समझती हैं। कुछ दिन तक तो छोटे साहब बड़े साहब ने इकबाल बहादुर को इतना अपने से नजदीक न आने देना चाहा, पर जब एक आदमी खिदमत करने पर तुला हुआ बैठा है तो उसे कहाँ तक दूर रखा जा सकता था। धीरे धीरे इकबाल उनके घर का सा आदमी होने लगा। मेम साहब ने उससे पर्दा करना छोड़ दिया और साहब भी अब उसके घर आने का स्वागत सा ही करने लगे। अब उससे काम कहने में भी कोई तकल्लुफ नहीं बर्ता जाता, वह उनके घर का मैनेजर बन गया था।

गयादीन अब भी दफ्तर में उसी तरह जुट कर मर खप कर काम करता था, पर अब अपने साथी क्लर्कों और अफसरों पर उसका वह प्रभाव न था, अब तो सब पर इकबाल का रंग था। इन दोनों के पीछे दो शक्तियाँ काम कर रही थीं। गयादीन के पीछे उनकी माँ की और इकबाल के पीछे उनके पिता की। गयादीन की माँ बड़ी धार्मिक प्रवृत्ति की थीं वह उठते बैठते उसे उपदेश देती—बेटा, सचाई और ईमानदारी से न डिगना अगर यह चली गई तो कुछ न रहा। चरित्र वह वस्त्र है जिसमें एक बार दाग पड़ जाने से फट जाने तक नहीं छूटता। एक बार जो अपने आसन से डिगा वह हमेशा के लिए चला गया, जैसे कपड़ा एक बार मैला हो जाने पर आदमी को चिन्ता नहीं रहती वह समझता है अब तो मैला हो ही गया है, कहीं बैठने से उसे परहेज नहीं रहता। हम लोगों को भूखे मर जाना मन्जूर है पर बेईमानी का मोहनभोग खाकर जिन्दा नहीं रहना है। उधर कचहरी के रिटायर्ड पेशकार अपने पुत्र इकबाल को दुनियादारी सिखलाते—'देखो बेटा सच बोलो या झूठ, चाहे एक बार खून का घूंट ही पीना पड़े पर अपने अफसर को हर तरह खुश रक्खो। अगर तुम्हारा अफसर तुम्हारी मुट्ठी में है तो तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, चाहे जो कुछ करो। तनख्वाह से बेटा आज कल किसका काम चल सकता है। अगर मैं धर्म-मूर्ति धर्मावतार बना रहता तो आज तुम्हारी चारो बहनें कुआँरी होतीं और हम लोग टके के तीन होते। यह अपनी आमदनी की ही बदौलत मैंने मकान बनवा लिया और इतने बड़े हुए खर्च संभाल लिए। मैं अगर रिटायर न हो गया होता तो तुम जहाँ तक पढ़ते पढ़ाता, पर अब तो सब खर्च तुम्हारे ही माथे है। देखो बेवकूफों की बातों में मत आना। नौकरी रोजगार और धर्म से कोई ताल्लुक नहीं है। आदमी के नाते से धर्म, सचाई और ईमान पर पर चलो, तो नौकरी और

रोजगार में इसे बर्तेगा, वह कभी तरक्की नहीं कर सकता। जितने लोगों ने पैसा कमाया है, तुम पता लगाओ तो तुम्हें मालूम हो जायगा कि उनमें एक भी ऐसा नहीं है, जिसने दूसरे के मुंह का निवाला न छीना हो, दूसरे को उल्लू न बनाया हो। भैया आजकल इसी का जमाना है। आजकल यही तरीके कामयाब हो सकते हैं।

दफ्तर में दिन पर दिन गयादीन का रंग उड़ता जाता, इकबाल बहादुर का जमता जाता। शैतान इकबाल पर कृपादृष्टि से देखता हुआ मुस्करा रहा था और गयादीन की मूर्खता पर ठट्ठे मारकर हँस रहा था। ईश्वर का कहीं पता न था।

× × ×

दफ्तर में उस रोज इकबाल बहादुर ने एक दूकानदार से धीरे से कहा सुनो जी, आज शाम को मैं आऊँगा। बीस सेर गेहूँ मुझे चाहिए।

'कैसे हुजूर ?'—दूकानदार ने कहा—'आपका कार्ड मेरी दूकान का तो है नहीं।'

और आधा सेर छूट जो मिलती है ! क्या हर बोरे में आधा सेर गेहूँ घट ही जाता है ? डांडी मारते हो, उसका क्या मुझे पता ही नहीं है। बड़े कानून-कायदेवाले बनते हो, तो बताओ यह गेहूँ जो इस तरह बचता है, उसे घर पर पहुँचाते हो या नहीं।

'मगर यह सरकार की तरफ से हमीं लोगों के नुकसान पूरा करने के लिए मिलता है न ?'

अच्छी बात है, जाओ।

इकबाल ने पल्लेदारों को बुलाकर कुछ इशारा कर दिया। थोड़ी देर में वही दूकानदार बड़बड़ाता हुआ आया—'हुजूर देखिए यह पल्लेदार न जाने कहाँ से बोरे निकालकर ला रहे हैं कि सब चना घुना हुआ निकल रहा है। ग्राहक इसे लेगा ही नहीं !'

'हम यह कुछ नहीं जानते। सरकारी माल है, जो मिलेगा लेना पड़ेगा।'

'मगर आज ही और लोग ले गए हैं, वह चना ठीक है।'

'तो तुम जाओ बड़े साहब से शिकायत कर दो।'

अब दुकानदार की समझ में सब बात आ गई। वह बोला 'हुजूर तो नाराज हो गये मालूम होते हैं, यों हम आपसे बाहर थोड़े ही हैं। मुझे तो डर बड़े साहब का था। कहीं ऐसा न हो उन्हें मालूम हो जाय तो मैं भी फँसूँ और आप भी फंसें।'

'इसकी तुम फिक्र मत करो मिस्टर,' इकबाल कांइयांपने से बोला—'यह गेहूँ साहब के ही यहाँ जा रहा है।'

'बहुत अच्छा' बहुत अच्छा' दूकानदार जैसे आसमान से गिरा हो 'आप आकर ले जाइयेगा।'

एक के बाद धीरे धीरे अनेक दूकानदारों से लगभग इसी किस्म की बातचीत हुई। बड़े साहब, छोटे साहब के यहाँ गेहूँ अन्धाधुन्ध पहुँचने लगा। इकबाल साहब स्वयं भी इस बहती गंगा में जी भरकर हाथ धोने लगे। जब घर-घर लोग आध-आध पाव गेहूँ प्रतिदिन प्रति व्यक्ति मिलने के कारण परेशान थे, बड़े-बड़ों के यहाँ चना और ज्वार खायी जा रही थी, उस वक्त इकबाल और उनके अफसरों के यहाँ बेहिसाब गेहूँ भरा हुआ था। फिर बात खाली गेहूँ ही तक न थी, गेहूँ तो केवल एक अन्न था। जरूरत से ज्यादा मिलने पर गेहूँ चोर बाजार में दो और ढाई सेर का बेच लिया जाता और नकदी खड़ी करली जाती। उनसे गुलछर्रें उड़ते। इकबाल भी खुश उनके अफसर भी खुश, नहीं गेहूँ का अन्न दूसरे काम निकालने में काम लाया जाता। कस्बे के इन्स्पेक्टर को अनाज की ज़रूरत पड़ती, वह इकबाल से कहता। इकबाल उसका काम कर देता और फिर उनको घर बैठे वह फायदा मिलता, जिसके

दर्शन जनना को ठोकरें और धक्के खाने पर भी न होते। यों बड़े साहब खुद ही हर चीज के परमिट काटते थे पर काम सब इकबाल के मारफत होता था। मेम साहब के लिये बढ़िया इकलाइयाँ, सफेद वायल और साहब के लिये सूट के लिये कपड़ा लानेवाला भी इकबाल ही था। बड़े लोगों को खुश करने और उन पर अपना प्रभाव जमाने के इकबाल के तरीके भी बड़े विचित्र थे। जब हर जगह साढ़े चार और पाँच छटाँक का घी बिकता था, उस समय बढ़िया दस सेर घी लेकर इकबाल साहब के यहाँ पहुँचता, 'हुजूर के लिये घी लाया हूँ।'

'क्या भाव का मिला मिस्टर इकबाल ?'—साहब पूछते।

'दस छटाँक मिलता है हुजूर।'

'नहीं भाई, याद करो, तुम भूल गये मालूम होता है। पाँच छटाँक का मिला होगा, आजकल यही भाव है। हिसाब लगाओ।'

'मैं पूरे होशोहवाश में बात कर रहा हूँ हजूर। यह आपकी जमींदारी में से आया है। घर के जानवर हैं। घर का चारा है। वहाँ यही भाव पड़ जाता है।'

'तो आपकी जमींदारी भी है इकबाल साहब ?' बड़े साहब प्रभावित होते हुये पूछते।

'मेरा क्या है ? जो कुछ है हुजूर का है।'

साहब खुश-खुश घर में घी रखते।

जमींदारी की बात इकबाल की मनगढ़न्त थी। पाँच छटाँक का घी लेकर साहब से दस छटाँक के हिसाब से वह ऊपरी आमदनी में से रुपये लगाकर देता था।

शहर भर में इकबाल का जोर था। लोग जानते थे वह सब कुछ कर सकता है; बड़े साहब तक उसकी पहुँच है, उससे सबका काम निकल सकता है। इकबाल इसी कारण शैतान की तरह मशहूर था कि वह

सबका काम कर देता था और सबसे काम करवा लेता था। हाँ, जिनसे उसका कोई मतलब न निकल सकता था, उन्हें वह पास फटकने नहीं देता, मुँह न लगाता था।

गयादीन का अब भी वही हाल था। उनका रुपया अब भी सोलह आने का ही भुनता था। वे अनाज के गोदाम में थे पर हराम के एक दाने पर लानत भेजते थे। नतीजा यह था कि आध पाव गेहूँ में बसर न होने के कारण वे भी साधारण लोगों की तरह जौ, चना और ज्वार खाते। तनखा के इने-गिने रुपये पिछले महीने का कर्ज चुकाने में ही खतम हो जाते और हर महीने का खर्च उधार लेकर चलता। कर्ज का बोझ दिन पर दिन बढ़ता जाता था। बच्चे एक एक बूंद दूध के लिये तरसते रहते थे और बड़ों को घी ऐसे मिलता था, जैसे टोटका किया जा रहा हो। जब गयादीन के पास ऐसे साबूत कपड़े नहीं थे, जिन्हें वह बिना एक टेढ़ी साँस लिये पहनकर दफ्तर जायें तो घर के और लोगों की तो बात ही क्या थी।

घर में गेहूँ बहुत कम हो जाने के कारण, कई दिन से गेहूँ की रोटियाँ सिर्फ बच्चों को खिलाई जाती थीं, बड़े सब चना और ज्वार खा रहे थे, गयादीन को दस्त लग गए। भारतीय पत्नी सब कुछ बर्दाश्त कर सकती है, पति का कष्ट नहीं देख सकती। एक दिन वह एकान्त में पति से बोली—क्यों जी, इन इकबाल बाबू को तुम्हीं ने नौकर रखवाया था न?'

'हाँ हाँ'—गयादीन बोला।

'तब वह तुमसे ज्यादा तनख्वाह पाते हैं?'

'नहीं तो।'

'मैं कह रही हूँ कि उनकी तनख्वाहों का कोई अन्त नहीं है और उनके आमदनी है। उनके घर में जो रहता है, वह तुमसे छिपी नहीं है

और उनके यहाँ इसी बीच में रेडियो लगा है। उनके घर के सामने से कोई मिठाईवाला कोई फलवाला खाली नहीं जाता, दिन भर सौदा खरीदा जाता है। इकबाल की बीबी जो इकलाइयाँ पहनती है, उनके यहाँ के बच्चे जो कपड़े पहनते हैं, वह हम लोगों के लिए रखने की चीजें हैं। इसका आखिर कारण क्या है ?'

'मैं नहीं जानता'—गयादीन ने टाल देना चाहा—'यह तो इकबाल ही जान सकता है। शायद वे लोग जुगत से रहना और पैसा खर्च करना जानते हैं, हम लोग नहीं जानते—यह कहकर वह चलने लगा।

'मुझे बेवकूफ न बनाओ'—पत्नी बोली—'खैर तुम नहीं बताना चाहते तो न बताओ मैं इकबाल बाबू से ही पूछ लूँगी। क्या मैं उनसे बोलती नहीं हूँ, मुझे भाभी कहते रहे हैं इतनी भी न बतायेंगे।'

पत्नी का यह अस्त्र काम कर गया। गयादीन को डर हुआ, कहीं वाकई में इकबाल से न पूछ बैठे और वह बुरा मान जाय। समझे मैंने ही सिखलाया है। वह बोला—'सुनो इकबाल ने अपना ईमान बेचकर यह सुख और आराम खरीदे हैं।'

'ऐसी ईमानदारी भी क्या'—पत्नी बोली—'जिसमें दुख उठाना पड़े।' घर की दशा पर वह काफी दुखी हो चुकी थी। उसके धार्मिक विश्वास की चूरें हिल चुकी थीं।

'तो तुम चाहती हो कि मैं भी यही करूँ। तुम यह नहीं समझतीं कि वह कितना बड़ा खतरा उठाकर यह काम कर रहा है। यह समझो उसका एक पैर हमेशा जेल में ही रहता है।'

पत्नी यह बात सुनकर काँप गयी।

गयादीन कहता रहा—'मैं चाहता तो मैं भी यह कर सकता था। एक दफे अच्छी तरह घर भर देता। जेल हो जाती तो काट आता पर तुम लोगों के लिए इतना कर जाता कि तुम्हें कोई तकलीफ न होती।'

'नहीं नहीं, यह मतलब न था मेरा'—पत्नी बोली—'मुझे यह सब क्या पता था।'

'मजबूर मैं हो गया माँ की वजह से। तुम अभी उनके स्वभाव को उतना नहीं जान सकतीं, जितना मैं जानता हूँ। जिस दिन उन्हें मालूम हो जाता कि बेईमानी की एक कौड़ी भी उनके काम आ रही है तो वे इस घर को छोड़ देतीं। चाहे वह भीख मांगकर खा लेतीं पर फिर इस घर में अन्न-जल ग्रहण न करतीं।

पत्नी निरुत्तर हो गई।

गयादीन चिन्तित हुआ, अरे यह इकबाल की छूत मेरे घर में भी घर कर रही है।

× × ×

कुछ दिनों से मार्केटिंग इन्स्पेक्टरों के द्वारा भेजे हुए अनाज में से बहुत काफी अनाज का अनुमान 'खराब निकल गया', 'सड़ गया' लिख करके गोदाम में कागज का पेटा भर दिया जाता है। चेकिंग करते वक्त एक दिन गयादीन का ध्यान इस बात पर आकर्षित हुआ। उसने इकबाल बहादुर को बुलवाया। क्यों भाई यह क्या बात है? इस कदर माल आजकल खराब क्यों दिखलाया जा रहा है?

जो निकलता है वही तो दिखलाया जाता है बड़े भाई—इकबाल ने कहा, गयादीन को मोहल्ले के नाते वह यही कहता था।

'देखो मेरी आँखों में धूल झोंकने की कोशिश न करो इकबाल! तुम यह नहीं समझते कि सरकार का इतना बड़ा नुकसान अगर बराबर होता रहा तो वह इस ओर उदासीन न रह सकेगी। क्या मार्केटिंग इन्स्पेक्टर बराबर यह सबूत न देंगे कि वह अच्छा माल भेजते रहे हैं, तब आखिर तुम्हारे पास बचने की क्या सूरत रह जायगी?

'तब क्या करूँ बड़े भैया? तनख्वाह में तो पेट भरता नहीं, यह

तिया-पाँचा न करूँ तो काम न चले । सरकार की जो बात तुमने कही, तो यह तो बताओ चोर को पकड़ेगा कौन ? जब चोरी में सभी शामिल हैं । तुम्हारा इकबाल इतना बेवकूफ नहीं है, जब वह चार बड़ों को खिला देता है तो एक खुद खाता है।'

'फिर भी बुरा काम बुरा ही है और चोरी चोरी ही, वह किसी दिन खुल न जायगी, यह नहीं कहा जा सकता। बुरे काम का बुरा अंजाम होता ही है, यह तुम्हें मानना ही पड़ेगा।'

'गुस्ताखी माफ कीजिएगा बड़े भाई ! आप सतयुग का धर्म कलयुग में बरत रहे हैं। वह जमाने लद गये जब बुरे काम का बुरा अंजाम होता था, अब बुरा काम ही फलता है ! जितने सचाई पर चलनेवाले हैं, उनकी आप हालत देख लीजिए। वह आपको कोड़ी-कौड़ी के लिए मोहताज मिलेंगे और बेईमान हर जगह फल-फूल रहे हैं। एक सेठ अपने मील में दस हजार मजदूरों का खून चूसता है, रात भर शराब पीता और ऐयाशी करता है, वह ब्राह्मणों को भोजन करवा देता है, एक धर्मशाला बनवा देता है और दुनिया उसकी दानवीरता का दम भरती है, बड़े-बड़े विद्वान् और धर्मात्मा उस लक्ष्मीवाहन के सामने दुम हिलाते हैं। पैसे से सब कुछ खरीदा जा सकता है—धर्म और यश भी।'

'मगर पाप का घड़ा धीरे-धीरे भरता रहता है। वह एक दिनफूटता जरूर है। जब रावण ऐसा सामर्थ्यवान् भौतिकवादी चक्कर में आ ही गया तो कौन कह सकता है कि वह बचा रहेगा।'

'आपने फिर उसी युग की दुहाई दी, बड़े भैया। आज की बातें करिए आज की । माफ कीजिएगा, आप अपने को ही ले लीजिए। इतने दिन आपको ईमानदारी और सचाई से काम करते हो गए, क्या भुना लिया आपने ? किस कदर आप तकलीफ उठा रहे हैं, यह क्या मैं जानता नहीं हूँ। मैं इस तरह से बेवकूफ बनने के लिए तैयार नहीं।

माफ कीजिएगा भाई साहब, सचाई पर इसलिए चलना चाहिए कि उस लोक में स्वर्ग-सुख मिलेगा। उस लोक के सुख के लालच में इस लोक को बिगाड़ देना अक्लमन्दी नहीं है। मैं इसे उधार धर्म समझता हूँ। नकद धर्म यह है कि यहाँ खाओ-पिओ, वहाँ क्या होगा यह कौन देख आया है।'

गयादीन को उत्तर सूझ न पड़ा। उन्हें भी ऐसा मालूम हुआ जैसे इकबाल जो कुछ कह रहा है, वह भी ठीक ही है। मैं उसे आदर्शवाद से गिरा हुआ चाहे मान लूँ पर आज के जीवन में इकबाल का यथार्थवाद ही सफल हो रहा है। आदर्शवाद परास्त होकर कोने में छिप रहा है, उसे शरण देनेवाले वही हैं, जिन्हें इकबाल हठधर्मी और बुद्धू समझता है।

× × ×

दूसरे दिन दफ्तर में बड़े साहब का हुक्म आया—इकबाल बहादुर को सीनियर इंसपेक्टर नियुक्त किया गया था। इकबाल यह बात जानता ही था। उसे अपने उन्नति करने के विषय में पूर्ण विश्वास था। दफ्तर-वालों को भी कोई ताज्जुब न हुआ। वे उसकी पहुँच को समझते थे और उसके चातुर्य का लोहा मानते थे। अगर धक्का लगा था तो गयादीन के दिल को। वह यह न समझता था कि इतना अन्धेर होगा। उसकी सारी ईमानदारी व मेहनत पर पानी फिर जायगा और इकबाल उससे इतना जूनियर उससे बाजी मार ले जायगा, ऐसा उसे स्वप्न में भी न ख्याल था। फिर भी उसने चूँ न की, हँसता ही रहा, इकबाल को बधाई दी। और कोई होता तो वह कुछ कहता भी, शायद अपील भी करता पर इकबाल के खिलाफ—अपने को बड़े भाई कहनेवाले के खिलाफ वह कुछ कर सके, यह उसके बस का नहीं है। अपना लगाया पौधा कौन काट सकेगा।

× × ×

अब इकबाल और खुलकर खेलने लगा। ज़मीन पर पैर ही न रखता।

एक रोज की बात है, एक कांग्रेसी ने उसे उस वक्त गिरफ्तार करवा दिया जब कि वह दो टेम्परेरी (अस्थाई) राशनकार्ड से अनाज लेकर जा रहा था। कांग्रेसी का यह कहना था कि वे राशनकार्ड जाली थे और जिन महमानों का उनमें जिक्र था, वे आये ही न थे। यह सब ज्यादा अनाज पाने के लिये फर्जी कार्यवाही थी। पुलिस ने कांग्रेसी और इकबाल दोनों के बयान लिये, इकबाल की जमानत ली और चूँकि यह मामला उसकी शक्ति के बाहर था, राशनिंग विभाग को यह केस सुपुर्द कर दिया। इकबाल को महज इतनी तकलीफ हुई कि उसे कुछ देर बाजार में इतने लोगों के सामने जिल्लत उठानी पड़ी और कुछ देर तक कोतवाली में बैठना पड़ा; पर इसका उस पर बिलकुल असर नहीं हुआ। केस में इनक्वायरी हुई पर उसका बाल भी बाँका न हुआ। पड़ोसी के नाते बेचारा गयादीन इस मामले में काफी दौड़-धूप करता रहा और परेशान हुआ। उसने जब इकबाल को एक बार फिर आगाह करना चाहा है तो वह हँसकर बोला 'आप भी क्या कहते हैं भाई साहब—'गिरते हैं शहसवार ही मैदान जंग में।'

दो सितम्बर, सन् छियालीस को सुबह पाँच बजे ही लगभग पाँच वर्ष बाद गृहस्थी के झंझटों में फँसे हुए गयादीन के घर से बाँसुरी पर भैरवी सुनाई दी। बड़ी देर तक वह स्वर-लहरी आस-पास के वातावरण में गूँज गयी। पुराने अभ्यासी कानों ने पहचान लिया, कोई वक्त था जब वे रोज यह मस्ती से भरी बाँसुरी सुना करते थे, उन्हें अगर ताज्जुब था तो यह कि आखिर इतने दिन बाद आज ही यह गयादीन को क्या सूझी।

गयादीन घूमकर लौटा तो आम के पत्ते तोड़कर लेता आया, बन्दनवार बनाकर उसने घर के दरवाजों पर टाँगे। तिरंगा झंडा उसके घर फहराया गया। शाम को अपने छोटे से घी के डिब्बे में घी लेकर उसने घी के चिराग जलाकर चबूतरे पर रक्खे।

अभी वह चिराग रख ही रहा था कि इकबाल उधर से निकला 'क्यों क्या बात है भाई साहब, आज बहुत 'दिनों बाद जवानी लौटकर आई है। आज सबेरे आपकी भैरवी सुनाई पड़ रही थी।'

'हाँ इकबाल,'—गयादीन खुश-खुश बोला। 'बहुत दिनों बाद ही जैसे आज इस देश पर से शैतान का साया उठा है, आज केन्द्र में अपनी सरकार स्थापित हुई है, आज देशद्रोही देश के कर्णधार नहीं हैं, आज उन लोगों ने राष्ट्र की बागडोर सम्भाली है, जो देश के हित के लिये वर्षों से पागल हो रहे हैं, अपना सब-कुछ त्याग चुके हैं। अब भूखों को अन्न मिलेगा और नंगों को कपड़ा। अब बेईमानी फल न सकेगी, अब सच्चाई का बिगुल बज चुका है। अधर्म-रात्रि समाप्ति हुई, सत्य का भैरवी-गान हो रहा है।'—कहते-कहते उसकी आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं, रोम-रोम खिल उठा।

सपने की राख

जिस गिरिजा को तीन वर्ष की उम्र से पालकर हरलाल ने जैसे अपने रक्त और श्रम-बिन्दुओं से सींचकर सात वर्ष की कर दिया है, उस मातृहीना की उस प्रबल आवश्यकता की पूर्ति वह नहीं कर पा रहा है, इसका मन ही मन उसे कितना दुख है, यह वह नहीं जानता है। गिरिजा की एकमात्र ओढ़नी, अकेला सलूका और फरिया (छोटा लहँगा) फट चुकी है और लाख प्रयत्न करने पर भी वह उसके लिए इन चीजों का प्रबन्ध नहीं कर पाया है! जिस गिरिजा की हर इच्छा और हर जिद उसने पूरी की है, जिसे गेहूँ की रोटी और दूध-चावल खिलाकर उसने स्वयं बेझरा और कोदों खाया है, जिसके जीवन को सौतेली माता की छाया से बचाने के वास्ते उसने तीस वर्ष की अवस्था में विधुर जीवन पर संतोष कर लिया है, उसी गिरिजा की ओढ़नी का जब वहतार-तार देखता है, उसके सलूके और फरिया में अपने अपटु हाथों के लगाये हुए थिगरों को वह गिन नहीं पाता, तो उसका शीश लज्जा से झुक जाता है। उस पर जब गिरिजा मचल-मचल कर कहती है—'काका, देखो मेरी ओढ़नी का क्या हाल हो गया है। देखो मेरा सलूका फिर यहाँ से नुच गया है, अब तो यह सिल भी नहीं सकता। यह फरिया पहनकर बाहर जाने में मुझे लाज लगती है काका—'तो उसका दिल टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। उसे क्या उसके कपड़ों की दशा दिखलाई नहीं देती है, पर करे क्या। शहाबाद के उन

बजाजों के पैरों पर उसने सिर रख दिया, जो किसी वक्त दूसरे की दुकान से कपड़ा खरीद लेने पर अपनापा प्रकट करते हुए शिकायत करते थे—पर कुछ नतीजा न निकला, उसने यहाँ तक कह दिया कि वह उन्हें मुँह-माँगे दाम देने को तैयार है, पर फिर भी उसे एक गिरह कपड़ा न मिला। शायद बजाज यह समझते थे कि चोरबाजार से कपड़ा खरीद सके, ऐसी हैसियत हरलाल की नहीं है। तब वह क्या कर सकता था।

उस दिन हरलाल ठाकुर की चौपाल से बड़ा खुश-खुश लौटा था—कांग्रेसी सरकार ने घोषणा (ऐलान) की थी—अनाज दो, कपड़ा लो और हर तहसील में इसके वास्ते इंस्पेक्टर नियुक्त हुए थे। अनाज तुलवाएँगे और उसके हिसाब से कपड़े की पर्ची (परमिट) देंगे। गिरिजा पड़ोसिन के यहाँ खेल रही थी, उसे बुलाकर हरलाल ने गोद में उठा लिया और बोला—'अब काका तेरे लिये कपड़े लायगा बिटिया।'

'सच्ची!'—गिरिजा का मुँह प्रसन्नता से खिल उठा—'फरिया, ओढ़नी, सलूका, सब काका?'

'सब बेटी।'

'अच्छा-अच्छा न काका?'

'और नहीं क्या बुरा-बुरा। अपनी कांग्रेसी सरकार दे रही है, तो क्या बुरा-बुरा देगी।'

और कांग्रेसी सरकार क्या है, कौन है, यह न समझते हुए भी गिरिजा के मन में उसके प्रति बहुत ही प्रेम और श्रद्धा का भाव उत्पन्न हुआ क्योंकि वह उसे उसके चिथड़ा हो रहे कपड़ों से छुट्टी दिलाने जा रही थी।

अनाज कटने में कुछ ही दिन की देर थी। बालें पक गई थीं पर

अभी किसानों का ख्याल था कि हफ्ता दो हफ्ता धूप और लग जाय तो अनाज जरा और पक्का मोटा हो जाय। जिस दिन से कपड़े की बात गिरिजा ने सुन ली थी, पड़ोस के खेल में उसे आकर्षण नहीं के बराबर रह गया था। वह हरलाल के साथ ही खेत जाती और साथ ही वहाँ से लौटती। कौओं, तोतों, गिलहरी, चूहों और अन्य जानवरों से अनाज की रक्षा करने में वह हरलाल का हाथ बटाती। एक छोटा सा डण्डा हाथ में लिये चिल्लाती हुई वह इधर-से-उधर दौड़-दौड़कर पशु-पक्षियों को भगाया करती। गेहूँ की उन सुनहली बालों में उसे ओढ़नी, लहँगा और सलूके के रंग-बिरंगे कपड़े लिपटे हुए दिखलाई देते। गेहूँ कटेगा तो उसे खाने-पीने की सुविधा होगी—इस तरह की बात कभी उसके मन में नहीं आती, क्योंकि किसान और फिर योग्य पिता होने के नाते हरलाल ने कभी उसे खाने-पीने का दुःख न होने दिया था। यह अनाज उसे कपड़े दिला सकता है, इस कारण वह उसे बड़ा प्यारा लगता था। उसे इस बात की बड़ी उतावली थी कि कब अनाज कटकर शाहाबाद जाय और कब उसे नए कपड़े मिलें। कभी कभी उसे ऐसा मालूम होता जैसे अनाज काटने में काका बेकार ही देर लगा रहे हैं, वैसे अनाज पक चुका है और वह मचलकर कहती—'अब कटाई शुरू करो न काका, देखो बालें कितनी सुनहली हो गई हैं।'

'अभी जरा कसर है बेटी, बालें अभी चिटकी नहीं हैं; बस दो चार रो जऔर हैं। तुम देखना यह ऊपर पतलीवाली झिल्ली फटने लगेगी और दाने इसमें से झाँकने लगेंगे। बस तभी कटाई शुरू हो जावेगी। देखो बखत आ गया होता तो गाँव में और किसी के यहाँ भी कटाई शुरू होती कि न होती। धीरज धरो। अब ज्यादा देर नहीं है बेटी।'

दोपहर में रोटी खाते वक्त या रात में खाट पर लेटते वक्त जब भी बाप-बेटी फुर्सत पाते तो गिरिजा कपड़ों की ही बात चलाती। ओढ़नी

किस रंग की होगी, फरिया, सलूका किस रंग के होंगे और उन्हीं की कल्पना में विभोर हो जाती।

खेत काटने लायक हो गया। हरलाल ने अपने हेली-मेलियों को इस बात पर राजी कर लिया कि इस बार हरलाल का खेत ही सबसे पहले कटेगा और हरलाल अनाज लेकर शहाबाद चला जायगा क्योंकि गिरिजा को एक-एक दिन माह हो रहा था। दूसरा होता तो लोग उसे अपना खेत कटाये बिना जगह से न हटने देते पर हरलाल से ऐसा कैसे कहते। वह तो योंही सबके चार काम करने को तैयार रहता था और जब वह जानते थे कि गिरिजा हरलाल को कितनी दुलारी थी।

खेत कटा, अनाज खलिहान ले जाया गया, जहाँ उसकी मढ़नी और उसौनी की गई। इन दिनों गिरिजा एक पैर से इधर से उधर दौड़ती रही। जो काम लोग करते, अपने नन्हें-नन्हें हाथों से गिरिजा वही करने लगती। न उसे खाने की सुध थी न पीने की, चाहती थी किसी तरह सब काम जल्दी से हो जाय। यहाँ तक कि उस रात जब हरलाल और पण्डित दादा बड़ी रात तक बड़े-बड़े डलवों से गाड़ी में अनाज भरते रहे तो वह भी एक छोटी सी डलिया लिए जुटी रही। उसे अपने हाथों-पैरों में पीड़ा मालूम हो रही थी, सिर भारी लगता था, गला कुछ रुँधा-रुँधा सा था, कई बार छींके आ चुकी थीं, पर अपने उत्साह में उसे इस सबकी चिन्ता न थी। हरलाल उसकी छींकों से कई बार चौंक चुका था और उसे आराम करने को कह चुका था, पर वह मानती न थी। जितना अनाज ले जाना था, वह गाड़ी में भरकर और बाकी घर पहुँचाकर जब हरलाल ने छुट्टी पाई, तभी गिरिजा ने भी दम लिया। दोपहर की बनाई रोटी परसकर जब हरलाल ने गिरिजा को खाने को बुलाया तो वह बेमन से दो-चार

कौर खाकर उठ गई। हरलाल ने पूछा—'क्या बात है? आज कुछ खाया नहीं तूने?'

'भूख नहीं है काका, कुछ जी अच्छा नहीं है।'

'तू भी तो बेटी हद्द करती है, शरीर देखकर काम करना चाहिए। अभी तेरी उमर ही क्या है, जो इतनी दौड़ती है।'

रात बहुत हो गई थी, आँखों में नींद झुकी आ रही थी; फिर भी गिरिजा काफी देर तक कह रही है, शहाबाद किस रास्ते से जायँगे, कहाँ अनाज देकर कपड़ा मिलेगा—यही बातें पूछती रही।

तड़के ही जब हरलाल की आँख खुली तो पास लेटी हुई गिरिजा का बदन उसे जलता हुआ मालूम हुआ। उसने सोचा ऐसे में तो वह अनाज लेकर न जा सकेगा। बैलों को सानी करके वह अनुभवी पण्डित दादा को बुलाने बाहर गया कि देखें गिरिजा को क्या बात है। पण्डित ने जैसे ही आकर गिरिजा के माथे पर हाथ रक्खा, उसकी आँख खुल गई।

'तुम तो कहते थे तड़के ही चलेंगे काका, फिर मुझे जगाया क्यों नहीं? देर क्यों कर रहे हो?'

'अब आज चलना न हो सकेगा बेटी, तुझे तो ताप (बुखार) हो आया है।'

गिरिजा के जिस सुन्दर मुख को बुखार की आग न झुलसा पाई थी, वह यह बात सुनते ही कुम्हला गया,—'नहीं नहीं काका, चलेंगे तो आज ही,'—वह मचली।

'ऐसे में कैसे चल सकते हैं बेटी, कहीं तुम्हें हवा लग जाय तो कुछ का कुछ हो जाय।'

'तो फिर तुम चले जाओ, मैं पण्डित दादा के यहाँ रह जाऊँगी।'

'ऐसी जल्दी क्या है बेटी, दो रोज बाद सही। राम न करे कहीं बाद में तुम्हारी तबियत ज्यादा खराब हो जाय, तब क्या होगा ?'

'तो पंडित दादा तो हैं।'

हरलाला ने पंडित दादा से सलाह की। वह बोले—'जब इतनी जिद करती है तो चले जाओ। बुखार है—मैं वैद्य से दवा लेकर दे दूँगा—उतर जायगा, और कल सुबह तक तो तुम आ ही जाओगे।'

'हाँ, और क्या। तो आप इसे अपने यहाँ ले जाओ, मैं जाता हूँ ?'

'अपने यहाँ तो ले ही जाऊँगा,'—कहकर पंडित दादा गिरिजा को उठाकर चले।'

'तो मैं जाता हूँ बेटी।'

'हाँ, काका जाओ जरूर,'—कहते-कहते गिरिजा की बुखार से जलती हुई आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं।

हरलाल गाड़ी जोतकर चल दिया। उसका शरीर शहाबाद की ओर जा रहा था, पर मन बेटी के पास कहरई में ही चक्कर लगा रहा था।

× × ×

सिद्धांत कोई बुरा नहीं होता और संस्थाएँ भी बिरली ही बुरा उद्देश्य लेकर जन्म लेती हैं। समूह में जब व्यक्ति एकत्रित होते हैं, तो सबके हित की बात सोचते हैं, पर जहाँ व्यक्ति अकेला हुआ उसके स्वार्थ ने उसे घेरा। संसार में मानव का सबसे बड़ा शत्रु मानव ही है—वही एक दूसरे को खाए जाता है, एक दूसरे के मुँह का कौर छीन लेता है। यही चीज हरलाल को शहाबाद में दिखलाई पड़ी। सरकार ने जनता की सुविधा के वास्ते ही यह गल्ला लेने और कपड़ा

देने की योजना बनाई थी। पर व्यक्ति का स्वार्थ यहाँ भी जनहित में बाधक हो रहा था। हरलाल ने देखा कि वहाँ बड़ी ही धाँधली है। कोई तरीका, कोई सिलसिला काम करने का है ही नहीं, किसान कई-कई रोज़ से गाड़ी लिये खड़े हैं, पर उनकी कोई सुनवाई नहीं होती, जो इन्स्पेक्टर साहब या उनके एजन्टों को भेंट-पूजा चढ़ा देता है वह इधर आता, उधर चल देता है, या फिर उन प्रभावशाली लोगों का काम जल्दी होता है; जिनसे उन लोगों का काम खुद ही अटकता रहता है, हरलाल को यह सब कुछ न आता था, वह जैसे का तैसे पड़ा था।

दो जून (वक्त) का चबेना लेकर हरलाल घर से चला था वह खतम हो चुका था, उस रात उसे पड़ा ही रहना पड़ा और अभी गल्ला कब तुलेगा, इसका कुछ ठिकाना न था। साधारण किसान की ही भाँति पैसा बाँधकर चलने की आदत हरलाल की नहीं है। एक तो पैसा ऐसा रहता ही कहाँ है, ज्यादातर काम अनाज के ही माध्यम से चल जाता है, जो थोड़ा-बहुत हुआ वह हारे अटके को पड़ा रहता है, उसने सोचा था शाम तक वह वहाँ से छुट्टी पा जायगा। और अनाज़ तुल जाने के बाद तो उसके पास पैसा हो ही जायगा। इसका फल यह हुआ कि दूसरा दिन उसे लगभग भूखे ही काटना पड़ा।

उसे जो परेशानी और कष्ट वहाँ पड़े-पड़े उठाना पड़ रहा था, वह तो था ही—गिरिजा की चिन्ता उसे बार बार सताती थी, मोह बड़ा पापी होता है—एक से एक बुरी कल्पना हरलाल के मन में गिरिज़ा के स्वास्थ्य के विषय में आती, पर वह ऐसा बुरा फँसा था कि न रहते बनता था न जाते। भरी गाड़ी लेकर इतनी दूर आया था, उसे ऐसे ही वापिस कैसे ले जाता, सब लोग हँसी उड़ाते, इन्स्पेक्टर साहब या एजेन्टों से कुछ कहने की उसकी हिम्मत न पड़ती थी, कहीं किसी ने डाँट दिया तो मोती सी आब यों ही उतर जायगी। एकाध लोगों को

झिड़की खाते वह देख चुका था—'सभी को तो जल्दी है, तो एकदम सबका कैसे तुल जाय ?'

न जाने कब तक हरलाल को वहाँ पड़े रहना पड़ता—इतने में दिखलाई दे गये ठाकुर चन्द्रिकासिंह, कांग्रेस के कार्यकर्त्ता, पाली के रहनेवाले हैं, हरलाल को अच्छी तरह जानते हैं, जब कहरई आये हैं तो उनके यहाँ भी ज़रूर आये हैं, हरलाल ने उनसे अपना दुखड़ा रोया। उन्होंने फौरन ही एक एजेन्ट से कहकर उसका भी नम्बर जल्दी लगवा दिया और एक आदमी भेजकर बाज़ार से उसके खाने के लिए सत्तू मँगवा दिया। अनाज तौलने में भी एजेन्ट लोग हरकत करते थे। तौलनेवाले गिनती गिनने में गड़बड़ कर देते, पर हरलाल को इस सब पर ध्यान देने की फुर्सत न थी, वह तो चाहता था कि किसी तरह अनाज तुल जाय तो कपड़ा लेकर वह घर पहुँचे। जैसे तैसे अनाज तुला और उसे कपड़े का परमिट मिल गया।

परमिट लेकर वह दूकान पर पहुँचा तो वहाँ भी अच्छी खासी भीड़ थी और कपड़े, ऐसा कपड़ा नहीं—मोटा मारकीन और रद्दी अतलस के थान, डोरिया ऐसा झिन्ना था कि मालूम होता था जाली है—बहुत ही कमजोर, पर हरलाल क्या किसी के सामने चुनाव का सवाल नहीं था। जो मिल रहा था वही खरीदना था। रात के आठ बजे कहीं हरलाल को कपड़ा मिल पाया। उसने सोचा अतलस का लहँगा गिरिजा को बनवा देगा। वह जानता था कि गिरिजा के मन लायक—अच्छा-अच्छा चमकदार रंगीन कपड़ा नहीं मिला था, जिसकी वह बातें किया करती थी, पर इतना उसे विश्वास था कि उन पुराने चिथड़ों से छुट्टी पाने के कारण गिरिजा इन कपड़ों को पाकर प्रसन्न ही होगी। काम खत्म हो जाने पर हरलाल की इच्छा होती थी कि उसके पर लग जाते और वह लाड़ली गिरिजा के पास पहुँच जाती। न जाने कैसी होगी

वह—उसकी चार वर्ष की मेहनत का कमाया हुआ अमूल्य धन, यही बार बार सोचता, पर रात ज्यादा हो चुकी थी और अनाज का रुपया लेकर इस वक्त जाना खतरे से खाली न था।

गल्ले के दफ्तर के सामनेवाले मैदान में जहाँ उसने पिछली रात काटी थी, वह उस रात भी पड़ रहा। नींद तो उसे क्या आती दुश्चिन्ताओं और दुःस्वपनों ने झपकी तक न लगने देने की कसम खा ली थी। करवटें बदलते बदलते किसी तरह रात कटी! मुँह अँधेरे ही वह गाड़ी जोतकर चल दिया। जितना वह आगे बढ़ता जाता, उतनी ही उसकी उत्सुकता बढ़ती जाती। बैल यद्यपि अच्छी खासी चाल से चल रहे थे पर उसे सन्तोष न था, वह बार बार उनकी दुम ऐंठ-ऐंठकर उन्हें भगाता।

कभी वह कल्पना करता कि किस प्रकार नये कपड़ों को देखकर गिरिजा की आँखें चमक उठेंगी, मुख प्रसन्नता से खिल उठेगा और अपने प्यारे काका की टाँगों में दुलार से लिपट जायगी, पर न जाने क्यों यह विचार ज्यादा देर तक न टिकने पाता और उसकी आँखों के सामने बुखार की आंग से झुलसे उस सुन्दर मुख ही हड्डियाँ भी हड्डियाँ उभरी हुई दिखलाई देतीं। गड्ढे में जाती हुई आँखें और रूखे केशों से युक्त वह मुख उसे पागल सा बनाने लगता और आँखें मूँदकर कभी वह नहीं-नहीं कह उठता; कभी यह अप्रिय कल्पना उसके सामने न आये, इसलिए सड़क के आसपास की चीजों को घूर-घूर देखता। जिससे वे उसकी आँखों में बस जायँ। गिरिजा की माँ की भी आज उसे बड़ी याद आ रही थी, जिसमें रात का वह स्वप्न तो उसके भुलाये भूलता ही न था जिसमें वह उसके सामने आकर खड़ी हुई थी और हाथ फैलाकर कह रही थी—लाओ मेरी बच्ची मुझे दे दो, तुमसे इसकी रक्षा न होगी। वह बार बार पछताता कि क्यों ऐसी गलती उसने की कि बुखार में गिरिजा

को छोड़कर चला आया, बच्चे तो जिद किया ही करते हैं, पर समझदारों को उचित बात ही माननी चाहिए न जाने क्या हाल होगा उसका यह ख्याल आते ही उसने फिर गाड़ी दौड़ाई।

× × ×

वह आ गया उसका गाँव, बाग के पास से जो उसने बैलगाड़ी मोड़ी तो देखता है रामदीन पैरगाड़ी पर घबड़ाया हुआ चला आ रहा है।

'मैं तुम्हीं को बुलाने जा रहा था काका।'

'क्यों क्या बात है गिरिजा कैसी है'—हरलाल की छाती धक-धक कर रही थी।

'बहुत बुरी हालत है काका, कुछ ही देर की मेहमान मालूम होती है, जैसे तुम्हीं को देखने को प्रान अटके हैं।'

'नहीं, नहीं' ऐसा न कहो रामदीन, मैं लुट जाऊँगा, किसके सहारे रहूँगा मैं'—चीख मारकर हरलाल रो पड़ा और बेतहाशा उसने बैलों को दौड़ाया।

रामदीन कहता रहा—उस दिन आधी रात से उसकी हालत बिगड़नी शुरू हुई, बेचारे बैदराज उसी वक्त आये और तबसे उसके सिरहाने से हटे नहीं, कोई कसर उन्होंने नहीं उठा रक्खी पर कुछ फायदा न हुआ। कल शाम को अचानक ही ठाकुर के बहनोई गाँव आ गये, वे होमोपैथी दवाई करते हैं, ठाकुर उन्हें लेकर खुद आये। उन्होंने कहा—डबल निमोनिया हो गया है, और दो दो घंटे पर दवा खाने को दी, पर अपना भाग्य ही खोटा दिखलाई देता है, कुछ न हुआ। सारा गाँव एक पाँव से पंडित के दरवाजे खड़ा है—सबका तो खिलौना थी गिरिजा, पर आदमी आदमी को मौत के मुँह में ढकेल चाहे दे, उसके मुँह का कौर नहीं छीन सकता।

पंडित के दरवाजे गाड़ी छोड़कर पागल-सा हरलाल अंदर दौड़ा। पंडिताइन की गोद से गिरिजा को लेकर उसने छाती से चिपटा लिया और चिल्लाया—'गिरिजा मेरी बेटी !'

गिरिजा की मुँदती आँखों में कुछ सन्धि सी हुई, वह पता नहीं होश में आई या बेहोशी में ही उसके मुँह से अस्फुट शब्द निकले—'काका...कपड़ा......लाये ?'

हरलाल विह्वल हो उठा; उसका कलेजा टुकड़े-टुकड़े हो रहा था, उसकी दुनिया लुटी जा रही थी—कपड़े लाया हूँ बेटा, तुम उठो तो पहनो कपड़े। मेरी गिरिजा मुझे धोखा न दे, मैं कहीं का न रहूँगा, हरलाल पागल हुआ जा रहा था।

कुछ क्षणों में उसके जीवन का एकमात्र सहारा लुट गया, उसकी खुशी का दीपक बुझ गया और उसके साथ ही वह अपना रोना-धोना सब भूल गया। अपने लाये हुए उन सब कपड़ों में उसने गिरिजा को लपेटा और श्मशान को चल दिया—सारा गाँव उसके पीछे चल रहा था।

'करार'

सुरेश के विद्याध्ययन और देश-सेवा में एक होड़-सी लगी रहती। हाईस्कूल पास करने के बाद से ही उसे किसानों में काम करने का एक चस्का-सा लग गया था, तब से पढ़ाई हार पर हार खाती रहती और देश-सेवा को अधिक से अधिक समय मिलता। उसके सहपाठी ही नहीं अध्यापक तक उसका आदर करते थे, क्योंकि बड़े से बड़ा नुकसान सहकर वह देश के कार्य में लगा रहता था। इस बार बी० ए० आनर्स में उसका चौथा साल था, अबकी परीक्षा न देने या न पास करने पर विश्वविद्यालय के नियमों के अनुसार वह बी० ए० प्रथम वर्ष में उतार दिया जायगा। इसलिए सुरेश यह चाहता था कि किसी प्रकार इस बार यह परीक्षा वह पास ही कर ले। उसके सहपाठी उसके लिए प्रार्थना करते थे, और प्रोफेसर सोचते थे कि वह किसी तरह परीक्षा दे दे, फिर पास होना तो कठिन बात न होगी, क्योंकि सुरेश के साथ अधिक अवसरों पर यही हुआ था कि वह परीक्षा न दे पाया था। जब वह परीक्षा देता तब तो पास अवश्य हो जाता। यूनिवर्सिटी खुलते ही यह विचार सुरेश व उसके हितचिन्तकों के मस्तिष्क में आये थे कि सन् बयालीस का आन्दोलन छिड़ गया। अब सुरेश कहाँ रुक सकता था; पढ़ाई, डिग्री और इतने अधिक समय के व्यर्थ जाने की बात सोचे बिना सुरेश स्वतन्त्रता-संग्राम की अग्नि में कूद पड़ा।

अपने जिले का शहर से सम्बन्ध बनाये रखने का यहाँ की आग को वहाँ पहुँचाने का सारा भार सुरेश के माथे था। पुलिस ने दमन बड़े जोर-शोर से शुरू कर दिया था। नित्य-प्रति बड़े से बड़े नेता से लेकर छोटे से छोटे कार्यकर्त्ता गिरफ्तार करके जेलों में ठूँसे जा रहे थे। सुरेश नौजवान था और वह भी सरकार की शक्ति और क्रियात्मकता को नष्ट-भ्रष्ट करके समाप्त कर देना चाहता था। अपने जिले के लोगों को उसने खूब ही संगठित कर लिया था। पास-पड़ोस के सब थानों पर हमला करके वे लोग उन पर राष्ट्रीय झण्डा लगा चुके थे। जिले भर की लाइन की पटरियाँ उखड़ चुकी थीं, तार के खम्भे गिर चुके थे। इन सब भयंकर कामों का मुखिया था सुरेश। पुलिस की नजरों में वह चढ़ चुका था, वह उसको जोरों से तलाश कर रही थी, पर सुरेश हाथ न लगता था। यद्यपि अब भी शहर से जाकर क्रांतिकारी पर्चे लाना और उन्हें पूरे जिले में बाँटने का काम सुरेश का ही था। थानों, चौकियों, स्टेशनों इत्यादि के उन आक्रमणों में जिनमें काफी लोग संगठित होकर काम करते थे, सुरेश किसी न किसी रूप से अवश्य होता था।

देश के नेताओं के अभाव में उनकी गिरफ्तारी से व्याकुल जनता द्वारा संचालित यह अधूरी क्रान्ति असफल हो गई। सरकार ने फौज और पुलिस की सहायता से बड़े कठोर हाथों इस आन्दोलन को कुचल डाला। ईंट का जवाब पत्थर से दिया गया। जिन पुलिसवालों ने उस समय किसी प्रकार क्षमा-याचना करके गिड़गिड़ाकर अपनी जान बचाई थी, वह इस समय संसार के अत्याचारों के इतिहास को चुनौती देकर उससे बढ़कर काम दिखला रहे थे। जिले में पुलिस-राज्य कायम हो गया था, शहर और देहात के सब कार्यकर्त्ता गिरफ्तार हो चुके थे, पर सुरेश हाथ न लगता था। उसके नाम का गैरजमानती वारन्ट

निकल चुका था, उसकी हुलिया सब थानों में पहुँच चुकी थी, यहाँ तक कि जिले का लगभग हर पुलिस अफसर यह भी जानता था कि सुरेश एक पैर से जरा लँगड़ाकर चलता है, फिर भी वे उसे न पकड़ पा रहे थे।

शहर की कोतवाली में किसी मुखबिर ने उस दिन खबर दी कि अमुक जगह में सुरेश अकसर आता जाता है और रात को ठहरता है। बात ठीक भी थी। वह दस-पाँच विद्यार्थियों का एक लॉज-सा था जो उससे सहानुभूति रखते थे। सुबह पाँच बजे ही वह मकान चारों तरफ पुलिस से घेर लिया गया और इन्सपेक्टर ने दरवाजा खटखटाया। लड़कों में से एक ने छत पर से जो झाँककर नीचे देखा तो वह सन्न रह गया। अपने साथियों को जगाकर उसने बतलाया। सुरेश सौभाग्य से उस रात को वहाँ न आया था। लड़कों ने सब आपत्तिजनक कागज इकट्ठे किये और उन्हें जला डाला। जब तक वह जल नहीं गये, दरोग़ाजी के खटखटाने की उन्होंने परवाह न की। उस राख को पैखाने में डालकर वे सब फिर अपनी-अपनी खाटों पर जा लेटे। एक आदमी दरवाजा खोलने गया। बड़े रोब में उसने अँगरेजी में इन्स्पेक्टर साहब से बातचीत की। 'क्या बात है साहब, क्यों सोना हराम कर दिया आपने ?'

'सुरेशचन्द्र तिवारी यहाँ हैं ?'

'कौन सुरेशचन्द्र तिवारी ?'

'जो कांग्रेस में काम करते हैं ?'

'यहाँ कांग्रेसी कोई नहीं है। यहाँ तो सब यूनिवर्सिटी स्टूडेन्ट हैं।'

'मैं यहाँ की तलाशी लूँगा।'

'सर्चवारन्ट है आपके पास ?'

'है।'

'दिखलाइए।'

इन्स्पेक्टर ने तलाशी का वारन्ट दिखला दिया। उस विद्यार्थी ने अन्दर आनेवाले सब सिपाहियों की तलाशी ली. और तब उन्हें अन्दर घुसने दिया। अभी भी अँधेरा ही था। सब लोगों को पहचानने की गरज से इन्स्पेक्टर ने जगाया, पर व्यर्थ ही। घर का कोना-कोना छान डाला गया पर न तो उन्हें कोई आपत्तिजनक वस्तु ही मिली न आदमी।

अभी अन्दर तलाशी चल रही थी कि आफत के मारे सुरेश ने साइकिल पर बड़ी तेज़ी में उसी मकान की सीढ़ियों पर आकर पैर टेका। पहचाने जाने के डर से वह एक कदम भी पैदल न चलता था। सवेरा हो रहा था, इसलिए बहुत जल्दी घर के अन्दर पहुँच जाने की उसे फिक्र थी। उसने अभी अपना काम बन्द न किया था इसलिए उसकी कोट की जेब में एक कागज़ों का पुलिन्दा और साइकिल पर मैले झोले में पैट्रोल इस तरह लटक रहा था जैसे घी हो। अंधाधुन्ध साइकिल चलाये चले आने के कारण सीढ़ियों पर पैर टेकने के बाद सुरेश ने देखा कि दरवाजे पर पुलिसवाला खड़ा है। सुरेश के पैर टेकते ही वह उसकी ओर मुखातिब भी हो गया।

'क्यों क्या बात है साहब?—उसने पूछा।

'सक्सेना बाबू अन्दर हैं? उनसे मिलना है।'—कहता-सुनता सुरेश सब कुछ जा रहा था पर उसका मस्तिष्क दूसरे काम में लगा था। वह सोच रहा था कैसे इसे चर्का देकर यहाँ से निकल भागूँ, वर्ना इस सब सामान के साथ पकड़े जाने पर पुलिस को कोई सबूत ढूँढने का भी कष्ट न उठाना पड़ेगा।

'घर में तलाशी हो रही है।'

'तो होने दो, जरूरी काम है ज़रा बुला दो।'

निकल चुका था, उसकी हु
कि जिले का लगभग हर पुि
एक पैर से जरा लँगड़ाकर च
रहे थे।

शहर की कोतवाली में किसी
अमुक जगह में सुरेश अकसर आत
बात ठीक भी थी। वह दस-पाँच वि
उससे सहानुभूति रखते थे। सुबह पाँच
पुलिस से घेर लिया गया और इन्स
लड़कों में से एक ने छत पर से जो झाँक
रह गया। अपने साथियों को जगाकर उस
से उस रात को वहाँ न आया था। लड़कों
इकट्ठे किये और उन्हें जला डाला। उ
दरोग़ाजी के खटखटाने की उन्होंने परवा
पैखाने में डालकर वे सब फिर अपनी-अपनी र
आदमी दरवाजा खोलने गया। बड़े रोब में उ
साहब से बातचीत की। 'क्या बात है साहब
दिया आपने ?'

'सुरेशचन्द्र तिवारी यहाँ हैं ?'

'कौन सुरेशचन्द्र तिवारी ?'

'जो कांग्रेस में काम करते हैं ?'

'यहाँ कांग्रेसी कोई नहीं है। यहाँ तो सब

'मैं यहाँ की तलाशी लूँगा।'

'सर्चवारन्ट है आपके पास ?'

'है।'

'कोई शरीफ़ आदमी होगा बेचारा। किसी काम से आया होगा, आपके कान्स्टेबिल से यह सुनकर कि अन्दर तलाशी हो रही है, उसने सोचा कहीं पुलिस उसकी भी छीछालेदर न करे, सो भाग निकला।'

'आप लोगों से बातचीत में नहीं जीता जा सकता'—'इन्सपेक्टर बोला—

'ख़ैर सक्सेना साहब कौन हैं आप लोगों में ?'

'यहाँ कोई सक्सेना नहीं हैं। सब ब्राह्मण हैं, एक ठाकुर है।'

घर का सामान बिखराकर, तकियों के गिलाफ फाड़कर, गद्दों की सीवन उखाड़कर, संदूकों का सामान फैलाकर पुलिस अपना-सा मुँह लिये चली गई। सुरेश को पकड़ने जो कान्स्टेबिल दौड़े थे, वह उसकी छाँह भी न छू सके। गलियों-गलियों वह अदृश्य हो गया। शहर के एक कोने में अपने एक हितचिन्तक के यहाँ पहुँचकर वह घर में दाखिल हो गया।

× × ×

सुरेश को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते पुलिस को छः महीने हो गये पर कुछ पता न लगा। मुखबिरों और गुप्तचरों से उन्हें पता लगता कि वह अमुक जगह पर आता है, पुलिस चुपचाप उस जगह की निगरानी करती, विश्वस्तसूत्र से पता पाने पर उस जगह पर धावा भी कर देती, पर वह लँगड़ा व्यक्ति अनगिनती आँखों को चकमा देकर भाग निकलता। ऊपर से लताड़ शुरू होती—बड़े अफ़सोस की बात है इतना बड़ा सी० आई० डी० डिपार्टमेन्ट है और ऐसे आदमी को नहीं पकड़ पा रहा है, जिसकी इतनी जबर्दस्त पहिचान उसे मालूम है। वह डाँट-डपट ऊँचे से ऊँचे अफ़सरों से शुरू होकर नीचे पुलिस के कान्स्टेबिल तक आती। सरकार सुरेश के गिफ्तार करने, पता देने अथवा गिरफ्तार

जो पुलिसवाले ने मकान के अन्दर पैर रक्खा, सुरेश ने साइकिल का पैडिल जोर से मारा और सरपट भागा।

कान्स्टेबिल ने जैसे ही अन्दर जाकर इन्स्पेक्टर से कहा कि एक आदमी बाहर आया है। यहाँ कोई सक्सेना बाबू है, उन्हें पूछता है। इन्स्पेक्टर ने कहा—पकड़ो पकड़ो उसे, सुरेश ही होगा। कई कान्स्टेबिल दौड़ पड़े, इन्स्पेक्टर भी दौड़ा, बाहर आकर देखा तो वहाँ कोई नहीं।

'क्या पहने था वह ?'

'कोट-पैन्ट, हुजूर !'

'दौड़ो तुम लोग पकड़ो उसे।'

बाहरवाला कान्स्टेबिल और कई और 'पकड़ो-पकड़ो' चिल्लाते दौड़े। इन्स्पेक्टर ने अब विद्यार्थियों की तरफ मुखातिब होकर कहा—देखिए साहब वह यहाँ आते तो हैं।'

'कौन ?'

'वही सुरेशचन्द्र।'

'मतलब आपका उसी कांग्रेसी से है जिसकी तलाश में आप हैं ?'

'जी हाँ।'

'क्या खूब फर्माया है आपने ! कांग्रेसी कोट-पैन्ट पहनेगा ? वह लोग जहाँ तक मैंने देखा है खद्दर का कुर्ता और धोती या पैजामा पहना करते हैं। वैसे आपका जो कुछ ख्याल हो।

इन्स्पेक्टर झेंप गया। मगर बोला—'आज कल तो उन्होंने अपने कपड़े जरूर बदल दिये होंगे। जब वह जानते हैं कि हम लोग उनकी तलाश में हैं। अच्छा आप यही बतलाइए कि अगर कोई गड़बड़ आदमी नहीं था तो भाग जाने की क्या जरूरत थी ?'

'कोई शरीफ़ आदमी होगा बेचारा। किसी काम से आया होगा, आपके कान्स्टेबिल से यह सुनकर कि अन्दर तलाशी हो रही है, उसने सोचा कहीं पुलिस उसकी भी छीछालेदर न करे, सो भाग निकला।'

'आप लोगों से बातचीत में नहीं जीता जा सकता'—'इन्सपेक्टर बोला—

'खैर सक्सेना साहब कौन हैं आप लोगों में?'

'यहाँ कोई सक्सेना नहीं हैं। सब ब्राह्मण हैं, एक ठाकुर है।'

घर का सामान बिखराकर, तकियों के गिलाफ फाड़कर, गद्दों की सीवन उखाड़कर, संदूकों का सामान फैलाकर पुलिस अपना-सा मुँह लिये चली गई। सुरेश को पकड़ने जो कान्स्टेबिल दौड़े थे, वह उसकी छाँह भी न छू सके। गलियों-गलियों वह अदृश्य हो गया। शहर के एक कोने में अपने एक हितचिन्तक के यहाँ पहुँचकर वह घर में दाखिल हो गया।

× × ×

सुरेश को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते पुलिस को छः महीने हो गये पर कुछ पता न लगा। मुखबिरों और गुप्तचरों से उन्हें पता लगता कि वह अमुक जगह पर आता है, पुलिस चुपचाप उस जगह की निगरानी करती, विश्वस्तसूत्र से पता पाने पर उस जगह पर धावा भी कर देती, पर वह लँगड़ा व्यक्ति अनगिनती आँखों को चकमा देकर भाग निकलता। ऊपर से लताड़ शुरू होती—बड़े अफ़सोस की बात है इतना बड़ा सी० आई० डी० डिपार्टमेन्ट है और ऐसे आदमी को नहीं पकड़ पा रहा है, जिसकी इतनी जबर्दस्त पहिचान उसे मालूम है। वह डाँट-डपट ऊँचे से ऊँचे अफ़सरों से शुरू होकर नीचे पुलिस के कान्स्टेबिल तक आती। सरकार सुरेश के गिफ्तार करने, पता देने अथवा गिरफ्तार

जो पुलिसवाले ने मकान के अन्दर पैर रक्खा, सुरेश ने साइकिल का पैडिल ज़ोर से मारा और सरपट भागा।

कान्स्टेबिल ने जैसे ही अन्दर जाकर इन्स्पेक्टर से कहा कि एक आदमी बाहर आया है। यहाँ कोई सक्सेना बाबू है, उन्हें पूछता है। इन्स्पेक्टर ने कहा—पकड़ो पकड़ो उसे, सुरेश ही होगा। कई कान्स्टेबिल दौड़ पड़े, इन्स्पेक्टर भी दौड़ा, बाहर आकर देखा तो वहाँ कोई नहीं।

'क्या पहने था वह?'

'कोट-पैन्ट, हुज़ूर!'

'दौड़ो तुम लोग पकड़ो उसे।'

बाहरवाला कान्स्टेबिल और कई और 'पकड़ो-पकड़ो' चिल्लाते दौड़े। इन्स्पेक्टर ने अब विद्यार्थियों की तरफ़ मुखातिब होकर कहा—देखिए साहब वह यहाँ आते तो हैं।'

'कौन?'

'वही सुरेशचन्द्र।'

'मतलब आपका उसी कांग्रेसी से है जिसकी तलाश में आप हैं?'

'जी हाँ।'

'क्या खूब फ़र्माया है आपने! कांग्रेसी कोट-पैन्ट पहनेगा? वह लोग जहाँ तक मैंने देखा है खद्दर का कुर्त्ता और धोती या पैजामा पहना करते हैं। वैसे आपका जो कुछ ख्याल हो।

इन्स्पेक्टर झेंप गया। मगर बोला—'आज कल तो उन्होंने अपने कपड़े ज़रूर बदल दिये होंगे। जब वह जानते हैं कि हम लोग उनकी तलाश में हैं। अच्छा आप यही बतलाइए कि अगर कोई गड़बड़ आदमी नहीं था तो भाग जाने की क्या ज़रूरत थी?'

यहीं सोऊँगा। वहाँ से चलकर वह अपने एक विद्यार्थी मित्र के यहाँ आकर ठहरा और उसे वकील साहब की गति-विधि देखने को भेजा। शाम को चार बजे उस युवक ने लौटकर खबर दी कि आज वकील साहब ने दिन भर शहर-कोतवाल सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस से मिलने और कोतवाली के चक्कर लगाने में बिताया है। सुरेश ने अपने उन कपड़ों से हाथ धोये, जो वह वकील साहब के यहाँ छोड़ आया था और लौट-कर उनके यहाँ न गया।

इन दिनों सुरेश ने दाढ़ी खूब बढ़ा रक्खी थी और वह तुर्की टोपी लगाता और सूट पहिनता था, क्योंकि उसे यह मालूम हो गया था कि उसके खाली सूट पहनने की बात पुलिस को मालूम हो गई थी। दाढ़ी-मूँछों ने खूब बढ़कर उसके चेहरे को ऐसा ढँक लिया था, कि वह पहचाना न जाता था।

उसके ऐसे मित्र भी थे जिन्होंने महीनों उसे अपने यहाँ आश्रय दिया था। वे उसकी खबर ले जाकर उसके घरवालों को देते थे। और वहाँ की खबर लाकर उसे बताते थे। सुरेश उन दिनों अपने एक विश्वस्त मित्र के यहाँ ठहरा हुआ था, जो सरकारी अफसर थे। उन्होंने उसके घर से खबर मँगवाई, तो मालूम हुआ कि सुरेश की माँ बहुत ही बीमार है—मृत्युशय्या पर है। ममतामयी दिन भर उसकी रट लगाये रहती है, पर यह खबर पाकर पुलिस ने भी अपना पहरा कड़ा कर दिया है, क्योंकि वह समझती है मरणप्राय माँ को देखने सुरेश अवश्य आयेगा। सुरेश के हृदय में अंधड़ से चल रहे थे, पर वह समझता था कि अभी उसे बहुत कुछ करना है! न जाने कितनी भूखों मरनेवाली माताओं की जिम्मेदारी और उनके कष्ट काटने का बोझ उसके सिर पर था। वह कैसे अपने जीवन को खतरे में डाल सकता था!

करवानेवाले के लिए बराबर इनाम बढ़ाती चली जा रही थी। यहाँ तक कि अब वह पाँच हज़ार रुपये हो गया था और सरकार की उदारता इतनी बढ़ गई थी कि यह पुरस्कार जिन्दा सुरेश के लाने के लिए ही नहीं था, मृत सुरेश को पाकर भी सरकार सन्तुष्ट होने को तैयार थी।

सुरेश की ज़मीन-जायदाद जब्त की जा चुकी थी, उसके भाई-बन्द गिरफ्तार किये जा चुके थे और उसके मित्रों ही नहीं, उन परिचितों तक पर, जिन्हें सरकार जानती थी, विपत्ति का पहाड़ टूट चुका था। सुरेश के गाँववाले घर में, बस स्त्रियाँ ही स्त्रियाँ रह गई थीं। पुरुषों के गिरफ्तार हो जाने से वे अनाथ हो गई थीं, पर वे वीर मातायें और और वीर-पत्नी थीं विचलित होना न जानती थीं।

अब सुरेश का सब प्रकार काम बन्द हो गया था। चौबीसों घंटे उसे अपनी जान बचाने की पड़ी रहती। शत्रुओं से वह सतर्क रहता ही था, पर मित्रों के विषय में भी वह निश्चिन्त न रह सकता, क्योंकि पाँच हज़ार रुपये की प्राप्ति और सरकार की निगाहों की इज्जत पर किसकी नियत कब डोल जायगी, यह न कहा जा सकता था। उसके मित्र भी अब उससे घबराते थे। जिसके यहाँ वह जाता वह यही सोचता कि अगर उसके घर पर सुरेश की गिरफ्तारी हो गई, तो वह बेमौत मारा जायगा! खुद राजद्रोही की मदद करने के अपराध में जेल में ठूँस दिया जायगा, और उसकी अनुपस्थिति में उसके परिवार के भूखे मरने की नौबत आ जायेगी। इसलिए ज्यादातर मित्रों के यहाँ पहुँचने पर उसका यही हाल होता कि वे सुरेश को देखकर सूख जाते। अपने एक वकील मित्र के यहाँ सुरेश पहुँचा, तो उन्होंने उसकी आशा से अधिक आवभगत की। सुरेश उनके यहाँ भोजन करके रात भर आराम करके मुँहअंधेरे यह कहकर निकला कि रात में लौटकर

'यथा राजा तथा प्रजा'

'समय कितना खराब लगा हुआ है'—मैंने कहा कि उसकी चक्की में गेहूँ के साथ घुन ही नहीं न जाने क्या क्या पिसा जा रहा है। एक व्यक्ति सुदूर पश्चिम के एक राष्ट्र में अपनी निजी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के वास्ते जनता को उपनिवेशों व साम्राज्य का प्रलोभन देकर दूसरों की स्वतन्त्रता का अपहरण करने को उठ खड़ा होता है···।

'बीच में बोलने के लिए क्षमा कीजियेगा ? दया ने कहा आपकी यह बात मेरी समझ में जरा कम आई—अपनी निजी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के वास्ते···।'

'अरे भाई राजनीति शास्त्र के प्राथमिक सिद्धान्तों में से यह है कि जब किसी देश का डिक्टेटर प्रजा के अन्दर अपनी स्थिति डाँवा-डोल देखता है तो वह एक सट्टा सा खेलता है। जनता की सद्भावनाओं को पाने के वास्ते वह उसकी किसी बहुत बड़ी भलाई की योजना करता है। अकसर इसका साधन युद्ध द्वारा राज्य-विस्तार होता है। यदि इस युद्ध में वह विजयी हुआ और उसने अपने राष्ट्र की जनता के लिए दूसरों से कुछ नोच खसोट लिया तो अपना ही हित देखनेवाले कम शिक्षित (जिनकी सभी देशों में अधिकता है) लोगों की सहानुभूति उसके साथ एक बार हो जाती है और इस प्रकार वह अपनी बिगड़ती हुई स्थिति को सुधार लेता है।'

'परन्तु हार जाने पर ?' दया ने प्रश्न किया।

सुरेशचन्द्र चार वर्ष बाद अपने उस नारकीय जीवन से छुटकारा पाकर बाहर आया। जनता ने उसके मार्ग में आँखें बिछा दीं।

सुरेश के भाई अब तक छूट चुके थे। इतने समय पश्चात् अपनी माँ को इस बीच में खोकर भाई-भाई जब मिले तो जनता का हृदय करुणा से भर गया। उस हृदय को पिघला देनेवाले दृश्य को जब अपने एकमात्र पुत्र को खोकर सुरेश व उनकी पत्नी दुःख से विह्वल होकर मिले—कोई न देख सका। फिर भी वे प्रसन्न थे, क्योंकि उन्हें कहाँ आशा थी कि अपने आत्मीयों से कभी स्वतन्त्र होकर वे मिल सकेंगे।

—o::o::o—

'यथा राजा तथा प्रजा'

'समय कितना खराब लगा हुआ है'—मैंने कहा कि उसकी चक्की में गेहूँ के साथ घुन ही नहीं न जाने क्या क्या पिसा जा रहा है। एक व्यक्ति सुदूर पश्चिम के एक राष्ट्र में अपनी निजी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के वास्ते जनता को उपनिवेशों व साम्राज्य का प्रलोभन देकर दूसरों की स्वतन्त्रता का अपहरण करने को उठ खड़ा होता है···।

'बीच में बोलने के लिए क्षमा कीजियेगा ? दया ने कहा आपकी यह बात मेरी समझ में जरा कम आई—अपनी निजी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के वास्ते···।'

'अरे भाई राजनीति शास्त्र के प्राथमिक सिद्धान्तों में से यह है कि जब किसी देश का डिक्टेटर प्रजा के अन्दर अपनी स्थिति डाँवा-डोल देखता है तो वह एक सट्टा सा खेलता है। जनता की सद्भावनाओं को पाने के वास्ते वह उसकी किसी बहुत बड़ी भलाई की योजना करता है। अकसर इसका साधन युद्ध द्वारा राज्य-विस्तार होता है। यदि इस युद्ध में वह विजयी हुआ और उसने अपने राष्ट्र की जनता के लिए दूसरों से कुछ नोच खसोट लिया तो अपना ही हित देखनेवाले कम शिक्षित (जिनकी सभी देशों में अधिकता है) लोगों की सहानुभूति उसके साथ एक बार हो जाती है और इस प्रकार वह अपनी बिगड़ती हुई स्थिति को सुधार लेता है।'

'परन्तु हार जाने पर ?' दया ने प्रश्न किया।

'हार जाने पर वह जनता की दृष्टि से गिर जाता है और तब उसे भागकर ही अपने प्राणों की रक्षा करनी होती है। लेकिन उसकी स्थिति अवश्य ही बिगड़ जाती जब कि एक बार जनता की आँखों में गिर चुका था, यदि वह कुछ प्रयत्न न करता तो भी। युद्ध करने पर सम्भावना इस बात की रहती है कि वह अपनी गिरती हुई स्थिति को फिर सँभाल ले अन्यथा यों भी बिगड़ेगी और यों भी।'

'ठीक है।'

'हाँ, तो मैं कह रहा था कि वह एक व्यक्ति जनता के अन्दर अपना प्रभुत्व स्थापित रखने के वास्ते उसे साम्राज्य-विस्तार का प्रलोभन देकर युद्ध ठान देता है और गरीब शक्तिहीन छोटे राष्ट्रों पर अपनी विशाल सेना लेकर चढ़ दौड़ता है, कुछ राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता का अपहरण करने-वाले के विरुद्ध उठ खड़े होते हैं कुछ ऐसे आततायी का साहस न बढ़ने देने के विचार से शस्त्र सम्हालते हैं और धीरे धीरे लगभग सारा संसार युद्ध की लपटों से झुलसने लगता है। प्रत्येक कुछ न कुछ खो रहा है। सबको युद्ध के कारण कुछ न कुछ असुविधाएँ हैं। इसीलिए तो मैं कहता था कि गेहूँ के साथ घुन ही नहीं और जाने क्या क्या पिसा जा रहा है, ऐसी वस्तुयें भी जिन्हें न गेहूँ से कोई सम्बन्ध है न चक्की से। बेचारे वे राष्ट्र भी जिन्हें इस सबसे कोई सम्बन्ध नहीं, जो कोने में पड़े हुए किसी प्रकार जीवन व्यतीत कर रहे थे, इस संसार-व्यापी अग्नि से अपने आपको न बचा सके, उनका भी सब कुछ उसमें स्वाहा होने लगा—धन व्यापार, सभ्यता, संस्कृति, शान्ति। और यह सब हुआ कैसे सिर्फ एक व्यक्ति की दुष्कामनाओं के कारण। संसार का सब कुछ उसकी कुवृत्तियों की बलिवेदी पर स्वाहा होने लगा। कैसी व्यापकता है, विस्तार का इससे बढ़कर उदाहरण कहाँ मिलेगा ?

'मैं आपकी इस बात से सहमत नहीं'—सहसा पण्डित जी बोल

उठे। वे ख्यातनामा कवि हैं और उच्च कोटि के विद्वान्। हम लोगों में उनका बड़ा ही आदर है और हमारे सब तर्क-सम्मेलनों का सभापति के स्थान से दिया हुआ भाषण अधिकतर उन्हीं के द्वारा बर्बस हो जाता है।

'आखिर क्यों?' मैंने प्रश्न किया।

'बात न इतनी व्यापक ही है न इतनी संकुचित ही जितनी इसे आपने बना दिया। मामला यह है कि राज्य-वृत्ति बिगड़ गई है और फलस्वरूप जनता की वृत्ति भी बिगड़ गई है और इस प्रकार जब सब लोगों की वृत्तियाँ बिगड़ गई हैं तो संसार की यह दशा होनी ही चाहिए?'

'तो क्या आपकी बात के माने मैं यह समझूँ कि संसार के सब शासकों की वृत्तियाँ खराब हो गई हैं?'

'मेरी समझ में किसी हद तक बात यही है। उसे अधिक सभ्य शब्दावली में हम यों कह सकते हैं कि सबके सब भौतिकता-वादी हो गये हैं और इसी कारण आजकल संसार में प्रत्येक व्यक्ति अपने संसारी स्वार्थ के लिए दूसरों पर कुठाराघात करने में जरा भी नहीं हिचकता। परलोक की बात पर विश्वास करना अब मूर्खता समझी जाती है, यही कारण है कि लोग बिना किसी भय के खुलकर आगे बढ़ते हैं, जरा भी संकोच नहीं करते।'

'लेकिन मैं यह नहीं मानता कि आपकी यह बात भी इतनी व्यापक है, अब भी ऐसे राष्ट्र और व्यक्ति हैं जो दूसरों के लिए ही जीते हैं और मरते हैं और संसार की इस समराग्नि में परस्वार्थ के लिए ही कूदते हैं।'

'सम्भव है ऐसा कोई एकाध व्यक्ति या राष्ट्र निकल आवे, परन्तु मेरी जो बात है वह वहाँ भी लागू होगी, यानी प्रजा की वृत्ति राज्य-

के अनुसार ही बनती-बिगड़ती रहेगी। यह सदा से चलता आया है और चलता रहेगा। एक सुनी हुई घटना में अपने मत की पुष्टि में बताता हूँ :—

विजयगढ़-नरेश महाराज सुमेरसिंह अपनी प्रजा के बहुत ही प्रिय शासक थे। उनके राज्य में प्रजा को सभी मनोवांछित सुख थे; परन्तु जब से महाराज ने पचपनवर्षीय होने पर भी कुछ दिन हुए रानियों की बड़ी संख्या में एक नवोढ़ा को और बढ़ा लिया था, सारे अमीर-उमराव और जनता उनके विरुद्ध हो गई थी। लोगों की राज्य-भक्ति को धक्का लगा था। महाराज के पास नित्य गुप्तचर संवाद दिया करते थे। प्रजा इस इस प्रकार आपकी बुराई करती है। ऐसे दुष्ट भी निकल आये थे जो महाराज के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे थे। महाराज यह सुनते और बहुत दुखी होते। इस प्रजा के लिये उन्होंने क्या त्याग नहीं किया और यह ऐसी कृतघ्न निकली। पहले उनकी सवारी निकलती थी तो लोग न्योछावर हो जाते थे, अब वह बात न दिखलाई देती थी। सलाम-जुहार अब भी लोग करते थे, परन्तु आँखों में वह राज्य-भक्ति का जोश न दिखलाई देता था। महाराज की समझ में उनका यह विवाह का कार्य इतना बुरा न मालूम होता था कि प्रजा इस जरा सी बात के लिए उनके विरुद्ध हो जावे।

शाम का समय था। महाराज सुमेरसिंह की सवारी बड़ी शान से नगर के बीच से जा रही थी। नगर की उत्तरी सीमा के निकट पहुँचने पर एक व्यक्ति की बड़ी ही आदरपूर्ण जुहार पर महाराज की दृष्टि ठहरी। वह एक बड़ा ही वृद्ध जर्जर व्यक्ति था। रंग उसका जितना काला था बाल उतने ही सफेद। भौंह और कानों पर के रोयें तक सफेद हो गये थे। शरीर में हड्डियाँ दिखलाई देती थीं। कहीं मांस का नाम तक न था। खाल सिकुड़कर लटक आई

थी। अपनी आँखों पर हाथ रखे हुए उन पर काफ़ी जोर डालते हुए वह महाराज की ओर देख रहा था। सहसा महाराज की आज्ञा से सवारी रुक गई। महाराज के इशारे पर वह वृद्ध पुरुष निकट लाया गया। महाराज ने उससे बड़ी ही नम्रता से पूछा—'वृद्ध पुरुष तुम्हारी अवस्था कितनी है?'

कुछ देर तक उँगलियों पर गिनने और हिसाब लगाने के बाद बूढ़ा बोला—'सरकार पंचानवे बरस'।

'तब तो तुम बड़े पुराने आदमी हो।'

'हाँ सरकार, मैं पैंतीस बरस का था जब बड़े महाराज यानी हुजूर के बाबा का सरगबास हुआ था।'

'तब तो सचमुच तुमने बहुत दुनिया देखी है। हमें एक बात बताओ, तुमने सुना होगा कुछ दिन हुए ब्याह किया है, प्रजा के लोग और अमीर-उमराव इसके लिए हमारा बहुत विरोध कर रहे हैं। हम तुमसे यह जानना चाहते हैं कि क्या हमसे यह काम बहुत बुरा हुआ है?'

'मेरी गुस्ताखी……'

बीच ही में महाराज बोल उठे—'हाँ हाँ' हमने माफ की, तुम्हें जो कुछ कहना है निडर होकर कहो।'

बूढ़ा और निकट सरक गया, बोला—'सुनिये महाराज, वह हुजूर के बाबा का वक्त था, मेरी उमर बीस बाइस की रही होगी, नस नस में जवानी का खून दौड़ता था। माता पिता दोनों ही मर चुके थे बिल्कुल निर्द्वन्द्व था और घर में एकदम अकेला। कुम्हारी का मेरा पुश्तैनी… धन्धा जमा हुआ था। उसी के बल पर खूब डंड पेलता था और दूध पीता था। शरीर में बल समाता न था और अपने से दुगुने को कुछ न समझता था। ऐसे मस्ती के समय की एक शाम ढल चुकी थी कि बड़े जोरों की आँधी आई, ऐसी जिससे बड़े बड़े आलीशान और

मजबूत मकान थर्राने लगे। हजारों घर बे-छप्पर और खपरैल के हो गये, धूल ऐसी उड़ रही थी और अँधेरा ऐसा छाया था कि हाथ पसारे न सूझता था। मैं अपने झोपड़े की टट्टी को भेड़कर अन्दर बैठा हुआ खैर मना रहा था कि कहीं मेरी यह झोपड़ी भी न उड़ जाय कि कोई दरवाजे की उस टट्टी को ढकेलता हुआ हड़बड़ाकर घुस आया।

मैंने डाँटकर पूछा कौन है? तो कोई जवाब नहीं मिला। दूसरी बार मैंने कड़ककर कहा—'बोलता है कि दूँ लाठी सिर पर।' तो जवाब मिला—'मैं एक औरत हूँ।' मैं घबड़ा गया, उठकर दिया जलाया तो दरवाजे के पास घबड़ाई हुई खड़ी उस स्त्री को देखा। एक नजर में ही मुझे दिखलाई दे गया कि इससे ज्यादा रूप न कभी अपनी उमर में दिखलाई दिया है, और न दिखलाई देगा। जैसा उसका शरीर सुन्दरता और यौवन के भार से लदा हुआ था वैसा ही बहुमूल्य गहनों से भी। उसके चेहरे पर बहुत ज्यादा घबड़ाहट देखकर मैंने कहा—'घबराओ नहीं, इस घर में तुम बिलकुल सुरक्षित हो, यहाँ तुम्हारी कोई हानि नहीं हो सकती है।

मुझे बतलाओ तुम हो कौन और यहाँ कैसे आ गईं?

उसने थोड़ा सा सम्हलकर कहा मैं सेठ अमोलकचन्द की पोत-बहू हूँ। घोड़ागाड़ी पर अपने एक सम्बन्धी के यहाँ जा रही थी कि आँधी आ गई। घोड़े गाड़ी से तुड़ाकर भाग गये और नौकर भी न जाने आँधी से छिपने के लिए कहाँ भाग निकले। मैं टटोलती-टटोलती यहाँ आ लगी।

बाहर की तरफ मैंने ध्यान दिया तो पाया कि अब आँधी के साथ ही खूब जोरों की बरसात हो रही है, ऐसा मालूम होता था मानो सब कुछ बह जायगा, इस वर्षा के आगे टिकेगा नहीं। सेठ का मकान नगर के दूसरे छोर पर था एक तो ऐसी वर्षा में उतनी दूर पहुँचना ही असम्भव

था दूसरे इस घबराई हुई और गहनों से लदी हुई स्त्री को इस झोपड़े में छोड़कर जाने की बात भी न जँचती थी। मैंने कहा—'बहन सुनो, तुम मेरी धरम की बहन हो। मैं अब यही ठीक समझता हूँ कि तुम अपनी रात इस झोपड़े में काटो, मैं दरवाजे पर बैठकर रखवाली करूँगा। ऐसी बरसात और घोर अँधेरी रात में तुम्हें अकेला छोड़-कर तुम्हारे घर खबर देने जाना या तुम्हारा वहाँ जाना नहीं हो सकता। इसलिए तुम बेखटके यहाँ सोओ, मेरे जीते जी तुम्हारा कोई बाल भी बाँका न कर सकेगा।

उसने मेरी बात को ठीक समझा और वह झोपड़े के अन्दर खाट पर लेट गई। मैं बाहर दरवाजे पर एक मोटा लट्ठ लिये हुए, रात भर बैठा हुआ आँधी-पानी के थपेड़े खाता हुआ उसकी रखवाली करता रहा। मुझे ख्याल था कि मेरे घर में रहते हुए उसके सतीत्व पर या उसके बहुमूल्य गहनों पर कोई हमला न कर दे। इस डर से मैंने रात भर में एक बार भी झपकी तक न ली।

सवेरा चमकता हुआ सूरज साफ आसमान लेकर आया। मैंने सेठ अमोलकचन्द के यहाँ खबर भेजी और थोड़ी देर में वे लोग गाड़ी लेकर अपनी बहू को लिवाने आ गये। जब वह जाने लगी तो मैंने अपनी पूँजी में का लगभग सवा सौ रुपया और काफी फल मिठाई उसके साथ दी। जिसे उन लोगों ने तभी स्वीकर किया जब कि मैं कहा कि वह मेरी धर्म की बहन है और जब वह मेरे घर से जा रही है तो मैं उसे खाली हाथ कैसे जाने दे सकता हूँ। साँस लेता हुआ बुड्ढा बोला—ऐसा था महाराज आपके बाबा का समय। उसके बाद आपके पिता जी का राज्य आया, अब मेरे विचार धीरे धीरे बदलने लगे मैं सोचने लगा मैंने उस रात को गल्ती की, स्त्री के गहने उतार लेता तो जिन्दगी भर जीविका के झंझट से बच जाता। बैठे बैठे आनन्द

उड़ाता। उसके बाद महाराज क्षमा कीजियेगा, आपका समय आया मैं वृद्ध हो चला था। मन में भावनाएँ भगवद् भजन और विरक्ति की उठना चाहिये थी पर अब अक्सर यह बात मन में उठती रहती है कि मैंने उस रात को बड़ी मूर्खता की जो उस स्त्री को इस तरह जाने दिया। मुझे चाहिये था कि उसका सब गहना उतार लेता और रात को उसके यौवन-सुख को लूटता। यह है महाराज आपके राज्य का प्रभाव। अब इस बात को आप ही समझ लीजिये कि आपने जो किया है और कर रहे हैं, वह अच्छा है या बुरा ?'

महाराज सुमेरसिंह सिर झुकाये हुए आगे बढ़ गये। क्षितिज पर के सूर्य ने पता नहीं अपने किस कर्म से लज्जित होकर बादलों की ओट में अपना मुँह छिपा लिया।

'नगद धर्म'

"अरे ! तुम यहाँ कब से हो राजीव ?"—अमृत ने प्रसन्नता से भरकर कहा।

राजीव भी अमृत को देखकर राजीव की भाँति खिल गया। किसी वक्त के सहपाठी, रोज साथ खेलनेवाले, कितने वर्षों के बाद अचानक ही मिल गये थे, प्रसन्न क्यों न होते ? "मेरे विषय में तुम नहीं जानते थे कि मैं यहाँ हूँ ? बड़े आश्चर्य की बात है। क्या कभी भी सिनेमा देखने नहीं जाते ?"

"नहीं, सिनेमा देखने की तो फुर्सत ही नहीं मिल पाती। फिर भी सिनेमा देखने और तुम्हारे विषय में जानने से क्या सम्बन्ध है ?"

"भाई, मैं यहीं एक फिल्म-कम्पनी का मुख्य अभिनेता हूँ, और माफ करना दोस्त, देश के नौजवान लड़के-लड़कियों के हृदयों पर राज्य करता हूँ। मेरी स्थिति से वह जितनी ईर्ष्या करते हैं उतनी शायद उन महान् नेताओं से भी नहीं करते, जिन्होंने अपना सब कुछ त्याग कर देश की सेवा में अपनी पूरी उम्र गँवा दी है। पर तुम अच्छे मिले यार, जो मुझे मालूम तो हो गया कि मुझे भी लोग नहीं जानते हैं—वर्ना मैं तो समझता था कि देश का हर आदमी मुझे जानता है; अब तुमसे क्या छिपाऊँ।"

"माफ करना राजीव, मुझे कुछ ऐसी आदत ही पड़ गई है कि

मैं अपने अध्ययन में ही लगा रहता हूँ, सिनेमा वगैरह देखने से उसमें बाधा पड़ती है। लेकिन अब जब मालूम हुआ है कि तुम उसमें काम करते हो तो तुम्हारा एकाध फिल्म देखने जरूर जाऊँगा।"

'धन्यवाद, धन्यवाद! तुम भी, यार मुझसे ही शिष्टाचार की बातें करने लगे। अच्छा बताओ, रहते कहाँ हो? शादी तो कर ही ली होगी, भाभी कैसी हैं? बच्चे-वच्चे भी हैं क्या?'

"तुमने तो एकदम से इतने सवाल पूछ डाले। मैं यहाँ के कालेज में मैथेमेटिक्स का प्रोफेसर हूँ, डिपार्टमेण्ट आव दि हेड...अरे अरे मैं भी...!"

नहीं, नहीं, बहुत खूब, 'डिपार्टमेण्ट आव दी हेड' खूब कहा—कहकर राजीव ठहाका मारकर हँस पड़ा।

'सुन भी, यार। तू तो अब भी वैसी ही शरारत भरी हँसी हँसता है। कोई फ़र्क नहीं आया।'

"यह हँसी ही तो जवानी है, यार! जिस दिन यह न रहेगी जवानी भी न रहेगी। और तुम्हें मैं देखता हूँ अमृत, तो मालूम होता है कि पहले से जो खोये-खोये रहने की आदत थी उसे तुमने इस बीच में काफी तरक्की दे दी है और अपनी उम्र से दस बरस बड़े दिखलाई देने की कोशिश कर रहे हो। खैर, बतलाओ, कालेज में मैथेमेटिक्स के हेड आव दि डिपार्टमेण्ट हो?"

"हाँ, कालेज के ही पास बँगला मिला है, वहीं रहता हूँ। अभी छै महीने हुए घर गया था। माँ मरणशय्या पर पड़ी हुई थीं—उन्होंने जबर्दस्ती शादी करवा दी, वर्ना मेरा तो कोई विचार था नहीं।"

'खैर, जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ, पर भाभी हैं कैसी? शक्ल-सूरत कैसी है? स्वभाव की कैसी हैं?'

'अब यह सब आकर देखना। तुम बताओ तुमने शादी की या पूरी तौर से ऐक्टर ही बने हुए हो?'

'की क्यों नहीं भाई, और शादी क्या की बरबादी कर ली। तुम्हें तो मालूम है, मुझे मेरी बुआ ने पाला था। वे मेरे बचपन में ही अपनी एक सहेली से वचन-बद्ध हो चुकी थीं कि उसकी लड़की से वे मेरा विवाह कर देंगी। अब पिछले साल ही वे मेरे सिर हो गईं कि तू उस लड़की से विवाह कर ले तो मैं काशीवास करने जाऊँ। मेरे इनकार करने पर रो-रोकर घर भरने लगीं—कहने लगीं—'इसी दिन के लिए तुझे पाल-पोसकर बड़ा किया था कि तू मेरी हेठी करावेगा? मेरी बात नीचे डालेगा? ठीक ही है, मैं तेरी हूँ कौन जो तू मेरी बात माने? उनकी समझ ही में न आता था कि आखिर मैं ब्याह करना क्यों नहीं चाहता हूँ। जब कि लड़की पढ़ी-लिखी है, आजकल की लड़कियों की तरह हुड़दंगी भी नहीं है, रोटी से लेकर पकवान तक वह बना सकती है, सीना पिरोना वह जानती है, तब कमी क्या रह जाती है? यह उनकी समझ से परे था कि आजकल का फैशनेबुल लड़का लड़की में क्या खोजता है? उनके उपकारों से मैं कभी उऋण नहीं हो सकता हूँ, इस कारण मैं उनकी इस बात को टाल न सका। विवाह होने पर श्रीमतीजी जो आईं, तो मेरा उनका स्वभाव छत्तीस के तीन और छै की तरह बिल्कुल एक-दूसरे के विपरीत निकला। नये विचारों से उतना ही चिढ़ती है जितना मैं पुरानों से भड़कता हूँ। तब बतलाइये कैसे पटे?"

'अजीब मजाक है दुनिया में। मैं तो यार बड़ा आस्तिक हूँ, पर कभी कभी श्रद्धा की चूलें हिलने लगती हैं। यह भगवान् करते क्या हैं, भाई। इनको मैं हमेशा धोखा ही खाते देखता हूँ, कोयल का जोड़ कौए के साथ लगाये हैं और कौए का कोयल के साथ। अब

'जब आप चाहें।'

'आज ही?'

'हाँ हाँ।'

'तो मैं जरा ड्रेस कर लूँ।'

× ×

'क्यों, साहब है?'

'साहब तो नहीं हैं, हुजूर।'

'बहू जी?'

'वह तो हैं।'

'उनसे कहो, अमृत बाबू कुछ बात करना चाहते हैं।'

'बहुत अच्छा, आप कमरे में बैठिए।'

'नमस्ते, प्रोफेसर साहब!'

'नमस्ते, नमस्ते। कहिये क्या हो रहा है?'

'कुछ नहीं, यों ही बैठी थी।'

'कहाँ गया राजीव?'

'कुछ कहकर तो गये नहीं हैं, पर आज बातचीत हो रही थी कि फुल-मून (पूरा चाँद) है; मूनलाइट (चाँदनी) पिकनिक होनी चाहिए। क्यों क्या छवि देवी भी नहीं लौटीं?'

'तभी तो आपके यहाँ पता लगाने आया?'

'तो वह भी गई होंगी। मैं खुद खाना लिये बैठी हूँ।'

'यह लोग कहकर जायँ तो क्या कोई नुकसान हो जाय?'—प्रोफेसर बोले।

'कुछ नहीं।'—दर्शिका ने कहा।

'अच्छा चलूँगा। नमस्ते।'

'नमस्ते।'

इन बेचारों की भी क्या जिन्दगी है—सोचने लगी दर्शिका। दिन-रात किताबों से इन्हें फ़ुर्सत नहीं मिलती। उस रोज क्या कह रही थी छवि कि अकसर पढ़ने की धुन में वह भूल जाते हैं कि खाना खाया है या नहीं। सुना है, संसार में इनका बहुत नाम है, बड़े ही प्रसिद्ध विद्वान् हैं। क्या ही विडम्बना है कि कहाँ तो ऐसे आदमी को ऐसी पत्नी मिलनी चाहिए थी जो और हर तरह इनकी साज-सम्हाल करती, कहाँ मिली हैं वह देवीजी, जिन्हें अपने बनाव-सिंगार और घूमने से ही फ़ुर्सत नहीं है? कैसे देवता पुरुष हैं कि श्रीमती जी बिना कहे-सुने पराये मर्दों के साथ गायब हैं, पर इनके चेहरे पर शिकन नहीं आई। दूसरा होता तो देवीजी को आटे-दाल का भाव मालूम हो जाता। सब चौकड़ी भूल जाती।

उधर रास्ते में सोचते जा रहे थे प्रोफेसर—यह है भारतीय नारी का आदर्श। मिस्टर रँगरेलियाँ मनाने गये हैं, पर कहीं विद्रोह का एक शब्द भी मुँह से नहीं निकला। बैठी राह देख रही है कि आ जायें तो गरम ही खाना खिलावे। दूसरे देश की औरत होती तो ऐसे आदमी को ठोकर लगाकर चलती बनती। वह गधा राजीव इसके मूल्य को क्या समझेगा? शुरू से ही वाचाल रहा है वह। कालेज में चटकीली मटकीली लड़कियों के पीछे पीछे घूमा करता था। वह तो चमक-दमक देखता है, उसे रत्न की क्या पहचान? उसके लिए तो इमिटेशन चाहिए। छवि और है क्या? पर वह उसी पर लट्टू है। आजकल उस पर डोरे डाल रहा है। मेरी आँखों पर पट्टी थोड़े ही बंधी है। लाख अध्ययन में लगा रहता हूँ, पर अन्धा थोड़े ही हूँ। विचार-शक्ति तो मुझमें इन लोगों से अधिक ही है। देखनेवाले कहते होंगे, अजीब आदमी है यह प्रोफेसर। पत्नी दूसरे के चंगुल में फँसी जा रही है और इसके कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। लेकिन

मैं क्या करूँ? मैं भी और लोगों की भाँति इनकी गर्दन नापूँ, एकाध को ठण्डा कर दूँ और खुद भी फाँसी पर लटक जाऊँ ? मेरी जान तो इतनी सस्ती है नहीं। मेरे जीवन का उद्देश्य महान् है, मुझे संसार के लिए कुछ करके जाना है। इन तुच्छ बातों की ओर दृष्टिपात नहीं करूँगा।

× × ×

प्रगतिशील समय अपने कार्य में रत रहा और उपर्युक्त रंग गाढे से गाढा होता गया। अपनी दकियानूसी पत्नी के कारण दुखी राजीव छवि के अभावों की पूर्ति करने में अधिक से अधिक सचेष्ट रहने लगा। यदि वह छवि का सहायक बना था तो छवि ने भी उसके जीवनरूपी पतझड़ को बसन्त बनाने में सहायता दी थी। दोनों प्रारम्भ में एक दूसरे से केवल सहानुभूति रखते थे, पर मानसिक नैकट्य ने परस्पर आकर्षण पैदा किया। वे एक दूसरे के और निकट आये तो उन्हें मालूम हुआ कि उनके नये साथी में वही बात है जो वह चाहते थे, जिसके लिए वह व्याकुल थे! दोनों एक दूसरे के गुणों अथवा अवगुणों पर रीझे और घुलमिल गये। मानसिक आकर्षण और नैकट्य ने शारीरिक आकर्षण और नैकट्य के लिए मार्ग ढूँढ़ निकाला।

उधर प्रोफेसर अमृत और दर्शिका भी अपने साथियों के अभाव में स्वयं परित्यक्त से होकर एक दूसरे से अधिक से अधिक सहानुभूति रखने लगे थे। वे राजीव और छवि की भाँति उतना अधिक मिलते-जुलते न थे, पर अभाव की प्रतिक्रिया जैसे किसी मानसिक लोक में उन्हें निकटतम बना रही थी। घूमने गई हुई छवि की प्रतीक्षा करते-करते प्रोफेसर अमृत अकसर सोचते—बेचारी दर्शिका भी मेरी ही भाँति उस दुष्ट राजीव की प्रतीक्षा कर रही होगी। कदाचित् यही सोच रही होगी कि जल्दी आ जायँ तो वह उन्हें गरम भोजन खिलाने का

सन्तोष प्राप्त कर सके। क्या जिंदगी है बेचारी की, अनाड़ी के हाथ पड़ा हीरा मट्टी मोल जा रहा है? कभी-कभी तो वह यहाँ तक सोच जाते—दर्शिका तो मुझे मिली होती!

राजीव की प्रतीक्षा में बैठी दर्शिका सोचती—वहाँ वे दोनों आनन्द कर रहे होंगे, यहाँ हम दोनों कुढ़ रहे हैं। बेचारे प्रोफेसर? कितने भले आदमी हैं, जैसे देवता! पत्नी कैसी कुल्टा मिली है? और कहीं से उनके दिमाग में बात आ जाती—मुझे यदि प्रोफेसर पतिरूप में मिले होते तो क्या बात थी? फिर ऐसी बात मन में आने के लिए वह अपने आपको धिक्कारने लगती। यह मुझे हो क्या गया है? मैं 'अपने आदर्श से गिर रही हूँ। कभी सोचती—मैं तो दिन-रात अब प्रोफेसर के ही विषय में सोचा करती हूँ, पर और सोचूँ भी किसके विषय में? लेकिन क्या प्रोफेसर भी कभी मेरे विषय में सोचते होंगे? अपने मन को बार बार रोकना चाहती, बार बार वह प्राचीन आदर्शों की दुहाई देती, पर घोर यथार्थ विवश किये हुए था।

× × ×

चाँदनी रात में नाव पर सैर करते हुए छवि ने राजीव की छाती में अपना मुँह छिपाते हुए कहा—'एक खुश-खबरी तुम्हें सुनाऊँ?'

'हाँ हाँ!' राजीव ने उसके केशों में अपनी उँगलियाँ फिराते हुए कहा।

'मैं माँ बनने जा रही हूँ।'

राजीव को जैसे एक धक्का लगा, फिर भी उसने अपने मनोभाव को छिपाने का प्रयत्न करते हुए कहा—'तो तुमको और प्रोफेसर को बधाई!'

'उस गरीब को क्यों बीच में घसीटते हो? उसने तो साल भर

से अधिक हो गया मेरे शरीर को स्पर्श तक नहीं किया। यह तुम्हारी ही शरारत है।'

'यह तो बुरा हुआ'—राजीव ने अप्रतिभ होकर कहा।

'बुरा नहीं, अच्छा ही हुआ'—दृढ़ स्वर में छवि बोली, 'यह हम लोग जो ऊँट की चोरी खाले खाले कर रहे थे वह आखिर एक न एक दिन खुलती ही, अब खुल गई। अब हमें इस मामले में फैसला कर डालना होगा।"

"लेकिन फैसला आखिर होगा क्या ?"

"तुम मुझे पहले यह बतला दो राजीव, कि तुम आनन्द के ही साथी तो नहीं थे ?"

'इतना नीच मुझे न समझो छवि, मैं चाहता तो यही हूँ कि एक बार जब तुम्हारे जीवन में आया हूँ तो अब इससे बाहर न जाऊँ। परन्तु मेरी अक्ल काम नहीं कर रही है। मैं अब भी तुम्हारे चरणों पर अपनी नौकरी, सारी प्रसिद्धि और सब सम्पत्ति छोड़ कर जहाँ तुम चलना चाहो तुम्हें लेकर चलने को तैयार हूँ।

"बस आ गए अपनी जात पर ? मुझसे भागने को कहते हो, मुँह छिपाने को कहते हो ? आखिर क्यों ? ऐसा मैंने क्या किया है ? मेरी मर्जी के खिलाफ मुझे अगर मेरे लाख विरोध करने पर भी किसी अनचाहे मनुष्य के गले बाँध दिया गया और मैंने सहारा पाते ही उसे त्याग कर किसी अधिक उपयुक्त को अपना लिया तो मेरा क्या दोष है ? मैं हर्गिज न मानूँगी। समाज के मुँह पर ही मैं उसकी इस विषैली जड़ पर कुठाराघात करके उसे अपनी गलती सुधारने का सबक दूँगी। मैं प्रोफेसर को त्याग करके तुम्हारी पत्नी बनूँगी,"—दृढ़तापूर्वक छवि ने कहा।

"और दर्शिका का क्या होगा ?"—दबी जबान से राजीव ने पूछा। वह छवि के तेज के सामने अप्रतिभ हो गया था।

"तुम्हें उसे त्यागना होगा।"—एक एक शब्द को जैसे फौलाद का बनाते हुए छवि ने कहा।

"लेकिन आखिर उसकी किस गलती पर?" राजीव के अन्दर का देवता बोला।

"इस गल्ती पर कि वह तुम्हारे योग्य नहीं है, तुम्हारी रुचि के अनुकूल नहीं है, तुम्हारे मन को नहीं भाती है। आज तुम उसकी गल्ती मुझसे पूछते हो, कल तक उसके विचारों को और वेशहूर होने की शिकायतें करते तुम्हारा पेट न भरता था। अब सब भूल गए? सुन लो राजीव, हमें अपने समाज को यह समझा देना पड़ेगा कि मानसिक सम्बन्ध के सम्मुख शारीरिक क्या अन्य कोई भी सम्बन्ध गौण है। तो कल हम लोग अमृत से बात करेंगे।

"अच्छा।"

× × ×

"मुझ अभागे की कैसे याद आ गई आप लोगों को, जो बुलाने का कष्ट किया"—कहते हुए प्रोफेसर अमृत ने राजीव के ड्राइङ् रूम में प्रवेश किया। "अच्छा, यहाँ तो मिसेज राजीव भी दिखलाई दे रही हैं," दर्शिका को भी वहाँ देखकर उन्होंने कहा।

"नमस्ते, प्रोफेसर साहब।"

"नमस्ते, नमस्ते! क्या मामला है राजीव यह कैसा आयोजन है?"

"बैठो अमृत! सब मालूम हुआ जाता है। हम लोग तुमसे कुछ महत्वपूर्ण बातें करना चाहते हैं—"राजीव ने कहा।

"बहुत अच्छा, पहले जरा मैं 'हमलोग' शब्द की परिभाषा जानना चाहूँगा।"

"हम लोग से मतलब है, मैं और राजीव," छवि एक एक शब्द पर जोर देते हुये बोली।

"बहुत खूब, बहुत खूब !" अमृत ने कहा ।

"मैं देख रही हूँ कि अपने स्वभाव के विरुद्ध तुम इस समय बहुत मजाक के "मूड' में हो और हम लोग हैं काफी गम्भीर। अच्छा होता जो तुम हम लोगों की बातें गम्भीरतापूर्वक सुनते और उनका उसी प्रकार उत्तर देते।"

'अच्छी बात है, मैं तैयार हूँ।'

'तो सुनो, अमृत,—छवि बोली, 'मैं माँ बनने जा रही हूँ ।'

'शाबाश ! शाबाश !' अमृत ने कहा—'कांग्रेचुलेशंस राजीव ।'

दर्शिका को छवि की बात सुनकर आश्चर्य तो न हुआ, पर वह यह जरूर सोचती रही कि इन शब्दों को यह स्त्री मुँह से कैसे निकाल सकी। राजीव कुछ संकुचित सा हो गया ।

छवि ने जरा भी अप्रतिभ हुए बिना कहा—'तुम यह न समझो कि मैं तुम्हें घसीटूँगी। राजीव अपने उत्तरदायित्व का बोझ सम्हालने को तैयार है।'

'यानी ?'

'मैं तुम्हें छोड़कर राजीव की पत्नी बनूँगी।'

दर्शिका का दिल धड़-धड़ धड़कने लगा।

'और दर्शिका को सपत्नी-रूप में स्वीकार करोगी?' अमृत ने प्रश्न किया।

दर्शिका के हृदय ने जैसे उछलकर बाहर निकल जाना चाहा।

'मैं उसे त्याग दूँगा'—राजीव बोला। वह अब तक कुछ संयत हो चुका था।

दर्शिका सोफे पर जैसी-की-तैसी बैठी रह गई। न हिली न डुली, उसके हृदय पर एक बार हथौड़े की सी चोट हुई। मालूम हुआ जैसे दिल ने धड़कना बन्द कर दिया, पर उसकी बुद्धि ने जैसे उसे झकझोर

कर कहा—इस आघात के लिए तो उसे तैयार रहना चाहिये था और वह प्रयत्न करने लगी कि वह अविचलित दिखलाई दे।

'पर क्या कानूनन आप लोगों को यह अधिकार प्राप्त है? हिन्दू ला इस विषय में क्या कहता है? क्या आप लोग जानते हैं?' अमृत ने पूछा।

'मैं चाहूँगा कि दर्शिका भी अपने लिये पति चुन ले,' राजीव ने कहा—'पर अगर वह न कर सके तो अपने अलग रहने का प्रबन्ध कर ले। वह गुजारे का रुपया मुझसे पा जाया करेगी!'

'और प्रोफेसर, मैं तुमसे कहूँगी,'—छवि बोली, 'कि जिसके मन को तुम अपने मन से न बाँध सके उस पर कानूनन जबर्दस्ती अधिकार जमाकर ही तुम क्या करोगे? न तुम स्वयं ही सुखी रह सकोगे, न उसी को बना सकोगे।'

"नहीं, मैं ऐसा न करूँगा। मैं तुम्हें अनुमति दूँगा कि तुम राजीव के साथ जाकर उसके हृदय और घर को आबाद कर सको, और साथ ही यह शुभ कामना भी करूँगा कि तुम्हें पुनः परिवर्तन की आवश्यकता न पड़े।

"धन्यवाद," छवि बोली।

"दर्शिकाजी, आपने क्या सोचा?" प्रोफेसर ने उसकी ओर मुखातिब होते हुये कहा।

"प्रोफेसर साहब, मैं जबर्दस्ती किसी से रोटी-कपड़ा लेना या उसकी दया पर निर्भर रहना बहुत ही निकृष्ट कर्म समझती हूँ। मैं जहर खा लूँगी पर यह न करूँगी। मुश्किल यह है कि अब मैं इस घर में एक क्षण भी नहीं रहना चाहती, पर न मायके में ही कोई ऐसा बचा है जिसके पास जाकर दो दिन काट सकूँ न ससुराल में ही। फिर भी कोई बात नहीं। धर्मशालाएँ तो कहीं नहीं गई हैं।"

"एक बात कहूँ, दर्शिकाजी ? अगर देखा जाय तो समस्या लाख उलझकर भी अपने आप ही सुलझ गई है। इन दोनों के एक हो जाने पर हम दोनों अकेले रह गए हैं। कहा जा सकता है कि हम दोनों पर संकट पड़ा है ! क्यों न हम एक दूसरे के आड़े आयें, एक दूसरे के सहायक हो जायें।"

"किस रूप में ? क्या पति-पत्नी रूप में ? नहीं प्रोफेसर साहब, मुझसे यह न हो सकेगा। मेरी आत्मा मुझे खा जायगी। वह मुझे कभी क्षमा न कर सकेगी। मैं अपनी नजरों में खुद गिर जाऊँगी। मुझे क्षमा करो प्रोफेसर।" दर्शिका बोली।

"पति-पत्नी के शारीरिक सम्बन्ध पर एकदम मेरा इस समय आग्रह नहीं है, दर्शिका। उसे शरीर की एक प्रबल भूख समझते हुए भी मैं उसे सब कुछ नहीं समझता। फिलहाल तो आपको किसी रक्षक की जरूरत है, जिसकी छाया में आप बसेरा कर सकें। उसके लिये मैं प्रस्तुत हूँ। मुझे भी एक ऐसी सहायिका की आवश्यकता है जो मेरे कठिन परिश्रम-युक्त जीवन को अपने स्नेह-स्पर्श से थोड़ा कोमल बना सके। इसके लिए मैं आपकी सहायता का प्रार्थी हूँ। उस सहायिका को पत्नी की ही संज्ञा दी जाय, इसका मुझे कोई विशेष आग्रह नहीं। जहाँ तक शारीरिक सम्बन्ध की बात है, आपकी रुचि के विरुद्ध आप मुझे कभी किसी ओर अग्रसर होते न पायेंगी। वैसे यदि नारी और पुरुष के इस शाश्वत सम्बन्ध में आपकी सम्मति होगी तो मैं इसे अपना सौभाग्य ही समझूँगा।"

राजीव सोचता था—दर्शिका हरगिज राजी न होगी, छवि प्रोफेसर से इतनी दुनियादारी की बातों की कभी कल्पना भी न कर सकती थी। वह आश्चर्यान्वित थी।

दर्शिका के मन में संघर्ष चल रहा था। आदर्श और यथार्थ की आँधियाँ सी आ-जा रही थीं, निदान यथार्थ ने आदर्श पर विजय पाई।

वह सोचने लगी—"अब मैं हिचकिचा क्यों रही हूँ? मैं ही तो दिन भर प्रोफेसर का ध्यान किया करती थी, यह कामना किया करती थी कि ऐसा देवतास्वरूप पति मुझे मिला होता तो मैं अपने जीवन को धन्य समझती ऐसी सेवा करती कि...! और आज जब वह हाथ पसारे खड़ा है तो मैं पीछे हट रही हूँ। वे आदर्श ही मेरे जीवन को क्या बना सके? मैं अब नगद धर्म पर विश्वास करूँगी।"

"प्रोफेसर, मुझे स्वीकार है," दर्शिका ने कहा।

छवि और राजीव कमरे में बैठे रह गये। दर्शिका अमृत के साथ उसके बँगले की ओर जा रही थी।

———

पुरखों की देहरी

मिशन स्कूल के चपरासी बरारू के बारे में वहाँ के लोगों की दो बिल्कुल विरोधी राएँ हैं। हेडमास्टर और मास्टरों की राय में वह बड़ा ही मक्कार, कामचोर, मुँह का मीठा और परले सिरे का चोर है, परन्तु विद्यार्थी लोग उसे बड़ा ही मिलनसार, फायदेमन्द, नम्र और मेहनती आदमी समझते हैं। बरारू इस स्कूल में तभी से काम कर रहा है जब से यह खुला है यानी तीन साल से और इसी कारण इस स्कूल के दैनिक जीवन में वह इस प्रकार घुल मिल गया है कि इतनी बुराइयों के देखने पर भी हेडमास्टर साहब उसकी नौकरी को बरकरार रखे हुए हैं।

यदि यह पूछा जाय कि बरारू स्कूल में कौन काम करता है तो पीर बबर्ची भिश्ती खरवाली कहावत याद आती है। अपनी उस कोठरी में से मैनेजर साहब ने बड़ी कृपा करके हेडमास्टर साहब के पयखाने के बराबर बनवादी थी, बरारू अपना स्याह मँझोला शरीर, चमकती हुई काली आँखें और चिन्ता की रेखाओं से चित्रित मस्तक लिए हुए सुबह चार बजे निकल आता है। नित्यकर्म से छुट्टी पाकर वह हेडमास्टर साहब की गाय भैंसों को दुहता है, बर्तन माँजता है, झाड़ू बहारू करता है, सौदा-सुलुफ लाता है तब स्कूल में पहुँचता है। स्कूल में सफाई रखना, घण्टा बजाना, चिट्ठी लगाना इत्यादि इत्यादि काम सब उसी के जिम्मे हैं। स्कूल का वक्त खत्म होने पर फिर हेडमास्टर

साहब के बँगले पर उसकी ड्यूटी शुरू हो जाती है जो उस वक्त खत्म होती है जब वह उनके सोने के बिछौने बिछा चुकता है। रात के नौ साढ़े नौ बजे आकर बरारू रोटी बनाता है, सिर्फ रोटी ही, जो नमक-मिर्च के साथ पानी की सहायता से वह गले से उतार लेता है। दाल-तरकारी तो कहीं साल में एक-दो बार बन पाती है जब हेड-मास्टरनी कृपा करके एकाध बार के लिए दे डालती है।

इतना अधिक काम होने पर भी बरारू कभी झींखता या चिड़-चिड़ाता हुआ नहीं दिखलाई देता, सदा एक हल्की-सी मुस्कराहट उसके चेहरे पर दिखाई देती है और जहाँ काम के लिए उसे बुलाया गया वह हेडमास्टर साहब को सर्कार, मास्टरों को बाबू और लड़कों को भैया कहकर फौरन उनका हुक्म बजा लाता है, कभी किसी प्रकार की ढील नहीं डालता। तलब उसे सिर्फ आठ ही रुपए मिलती है, जिसमें से तीन रुपए तक खाने-पीने में खर्च हो जाते हैं, और बाकी वह कोठरी में गाड़कर रखता है। अगर कभी उसकी तक़दीर ने ज़ोर मारा और अपनी पहुँच के अन्दर उसे किसी के रुपये-पैसे मिल गये तो वह उन्हें बिना किसी तरह की हिचकिचाहट के गायब कर देता है और अपनी कोठरी के उसी गड्ढे में फौरन पहुँचा देता है। शाहखर्ची करते हुए वह कभी नहीं देखा जा सकता, बड़ा ही कंजूस है, एक-एक पैसा दाँत से पकड़ता है। कभी कोई नया कपड़ा पहने हुए उसे किसी ने नहीं देखा, हमेशा लड़कों के दिये हुए फटे-पुराने कपड़े ही उसके शरीर पर दिखलाई देते हैं। लेकिन दिन-पर-दिन उसके मुख पर चिन्ता की रेखाएँ गहरी ही होती चली जाती हैं। इतनी गहरी की सदा मुख पर रहनेवाली मुस्कराहट उन्हें छिपा नहीं पाती।

इसी तरह बरारू का जीवनरूपी ठेला ढिचर-ढिचर करके आगे बढ़ता जाता है, कहा जा सकता है कि सुचारु रूप से और अक्सर एक

रस। उसमें परिवर्तन होने की सम्भावना तभी मालूम होती है जब बरारू कहीं हाथ की सफाई दिखला देता है और सरकार खफ़ा हो जाते हैं, वे धमकी देते हैं—नौकरी से बरखास्त करने की, कभी-कभी मन में ऐसा निश्चय भी करते हैं पर फिर उसकी सेवाओं का ख्याल करते हैं, और उसे धक्का देकर कहते हैं—जा बाहर अपना काम कर बेईमान, चोट्टा।' इसके बाद कहते हैं—वह अपनी आदत से मजबूर है तो तुम लोग अपने रुपये-पैसे से होशियार क्यों नहीं रहते, कितनी बार तो तुम लोगों को समझा चुका।

× × ×

अप्रैल का महीना था, स्कूल में इम्तहान हो रहे थे, आजकल काम और ज्यादा बढ़ गया था। रात के बारह बज रहे थे परन्तु बरारू की आँखों में नींद न थी वह अपनी कोठरी के सामने पड़ी हुई खाट पर लेटा हुआ आसमान की ओर देखता हुआ न जाने क्या सोच रहा था। उसकी वह चिन्ता ही उसकी नींद में बाधक हो रही थी। इतने में उसे पैरों की चाप सुनाई पड़ी, सिर उठाकर देखा तो ओम-प्रकाश चला आ रहा है।

ओमप्रकाश स्कूल का सबसे अच्छा खिलाड़ी, सबसे खराब पढ़ने-वाला और बड़ा ही मुँहज़ोर लड़का है। स्कूल वह इसलिए आता है कि यह उसका एक प्रकार का व्यसन हो गया है अथवा इसलिए कि यहाँ उसके मनोरंजन का सामान काफी इकट्ठा रहता है। दिन भर में एकाध घंटे किसी क्लास में चला गया तो चला गया, वर्ना वह भी नहीं, हमेशा किसी-न-किसी मैच का प्रबन्ध करता होता है। इम्तहान के दिन उसके लिए बला के दिन होते हैं, अगर किसी तरह पेपर आउट होने का जुगाड़ लग गया तब तो कहना ही क्या है, वर्ना बड़ी सफाई से नकल करता है और इस तरह अगर तकदीर चेत गई

तो दर्जा पा जाता है वर्ना फिर उसी में पक्का होने के लिये रुक जाता है। आज ऐसे ही कुछ फेर में वह इस समय स्कूल आया है।

बरारू ने उसे देखते ही कहा—पायँ लागी भैया, एह बखत कहाँ भूलि परेव ?

'बात यह है बरारू ?' ओमप्रकाश ने बड़ी लापरवाही से उत्तर दिया—कि आज एक गोरे से अभी लड़ाई हो गई, उसको हम लोगों ने मार के गिरा दिया। चलते वक्त जेबों की तलाशी ली तो उसमें एक अद्धा दारू का मिला। यह तो तुम जानते हो कि ब्राहाण आदमी दारू छू नहीं सकते, सोचा चलें बरारू ही को दे दें। तुम तो दारू पीते होगे बरारू ?'

बरारू की आँखों में प्रसन्नता और प्रेम के आँसू झलकने लगे। गद्गद् कण्ठ से वह बोला—अरे भैय्या कहाँ मिलती है दारू अब ! जब बापू जिन्दा थे, हमको घर की फिकिर न थी तब फाजिल पैसे मिल जाने पर कभी-कभी कलवरिया जाकर शराब-ताड़ी पीते थे, अब इसकी गुंजाइश कहाँ, चार-पाँच साल हो गये एक बूँद आचमन करने तक को नहीं मिली। आपने बड़ी किरपा की भैया जो हमारे ऐसे गरीब आदमी का ख्याल रखा, आपके ऐसे गरीबपरवर न होयँ तो हम लोग कैसे जियें। यह कहकर लगभग झपट के ही बरारू ने शराब का अद्धा ओम के हाथ से ले लिया और काग निकालकर गट-गट पीने लगा।

जब खाली करके बोतल रखी तो ओम बोला—क्यों! बरारू हमारा भी कुछ काम कर सकते हो ? पाँच रुपए और देंगे।

'पाँच रुपिया, एक, दो, तीन, चार, पाँच। कौन काम है भैया ? करबै काहे न, आप हमारा इतना ख्याल रखौ तौ हमौंका तो कुछ करैं का चाही, बताओ का हुकुम है ?'

'अच्छा, तो ज़रा सीढ़ी लैके दफ्तर तक चलो।'

× × ×

दूसरे रोज सवेरे जब हेडमास्टर साहब को बरारू के झाड़ू देने की आवाज न सुनाई पड़ी तो उन्हें कुछ चिन्ता हुई। इतने साल उसे नौकरी करते हो गये थे, पर आज तक कभी ऐसा ना हुआ था। वे भरभराकर उठ पड़े। उसकी कोठरी के सामने जाकर देखा तो चारपाई खाली पड़ी थी, स्कूल की ओर बढ़े तो देखा मैदान में बरारू एक सीढ़ी लिए पड़ा हुआ है। सीढ़ी देखकर उनका माथा ठनका, दफ्तर तक पहुँचे। वहाँ देखा वेन्टीलेटर (हवा जाने के लिए ऊपर बनी हुई खिड़की) के पास से दीवार का चूना गिरा है, शक और भी बढ़ा। दफ्तर खोला, सब ठीक था, आल्मारी खोली तो नवें दर्जे के आज के हिसाब के पर्चेवाला लिफ़ाफा फटा हुआ था और उसमें एक पेपर कम था। पलक मारते ही उनकी समझ में सब माजरा आ गया।

दफ्तर बन्द करके वे फिर बरारू के पास पहुँचे, और उसे जगाने की कोशिश की, तब उन्हें न मालूम हुआ कि वह नशे में है। बड़ी देर में बुदबुदाकर बोला—हम कुछ नहीं जानित, सोइत हैं, दारू थोड़े ही पिये हैं नशे में नहीं हैं ओम भैय्या दारू दिहिन हैं।

उस रोज हेडमास्टर साहब के तीन हुक्म निकले—नवें दर्जे का हिसाब का इम्तहान आज नहीं होगा, उसकी तारीख की सूचना बाद में दी जायगी, नवें दर्जे का ओमप्रकाश शुक्ला आज से इम्तहान नहीं दे सकता और बरारू चपरासी नौकरी से बर्खास्त किया जाता है।

× × ×

दोपहर का वक्त था, गर्मी जी खोलकर पड़ रही थी। कमरे में पड़ा हुआ ओमप्रकाश सोच रहा था कि अब की बार पिताजी को दर्जा न मिलने का क्या कारण बताएगा कि बाहर से आवाज आई—भैय्या!

बाहर निकलकर देखा बरारू खड़ा हुआ है, उसका टूटा सन्दूक और उसकी छोटी-सी गिरस्ती सब उसके कन्धे पर है। ओमप्रकाश को देखते ही चबूतरे पर धक्क से बैठ गया और उसके पैर पकड़कर बोला—नौकरी छूट गई भैया, हम गरीब आदमी अब कैसे पार होई, खाय का ठिकाना नहीं अब आपै का सहारा है। ओमप्रकाश ने उसे कमरे में आने का इशारा किया और आराम कुर्सी पर पड़कर सोचने लगा—यह गरीब मेरी ही वजह से तो हलाल हुआ है, मुझी को चाहिए इसकी रोजी का इन्तजाम करूँ। पचास साठ रुपए हर महीने फूँक देता हूँ; थोड़ा समझ-बूझ के रहूँ तो इसका भी गुज़ारा हो सकता है। इसके रहने से आराम भी बहुत हो जायगा। बोला—अच्छा बरारू रहो यहाँ, जो तलब स्कूल में तुम्हें मिलती थी वही मैं भी दे दिया करूँगा। खाना तो तुम बना लेते हो न? हमारे लिए भी बना लिया करना। रुपए मुझसे लो और बाजार से सामान लाकर रख लो।

'आप हमारा बनावा भवा खैहौ भैया?'

'हाँ हाँ, खायँगे क्यों नहीं, जब होटल में खा लिया तो बाकी क्या रह गया?'

उसी रोज से बरारू ओमप्रकाश के यहाँ रहता है, स्कूल को देखते हुए यहाँ उसके पास बहुत थोड़ा काम है। एक डील का काम ही कितना, और वह भी ओम ऐसे सैलानी आदमी का। जब जी में आती है कह देता है 'बरारू आज रोटी का झंझट हटाओ, बाजार से पूरी ले आओ जाके।' तब बरारू अपने भैया के साथ-साथ पूरी ही छकते हैं। थोड़ा सुख, आराम और अच्छा खाना-पीना पाकर वह अब कुछ मोटा भी हो चला है, लेकिन उसकी दो बातों में अन्तर नहीं

आया—एक तो उसकी कञ्जूसी नहीं जाती दूसरे उसके मस्तक पर की वे चिन्ता-रेखाएँ, वे दिन पर दिन गहरी ही होती जाती हैं।

× × ×

पाँच साल बीत गए।

ओम हाई स्कूल पास करके अब अजगैन में असिस्टेण्ट स्टेशन मास्टर हो गया है। भले आदमी की संज्ञा चाहे अब भी उसे न दी जा सके पर गृहस्थ अब उसे पूर्णतया कहना ही होगा, क्योंकि कल ही वह विवाह करके लौटा है।

शाम के वक्त बरारू की ज़रूरत पड़ी, अपने गाँव के बड़े मकान के पिछवाड़े जाकर ओम ने देखा—बरारू एक पुराने कपड़े पर बहुत-से रुपए और रेजगारी लिए हुए उससे उलझ रहा है।

'ऐ, इतना रुपया तू काहे के लिए इकट्ठा कर रहा है, बरारू ?'—ओम ने पूछा।

'मूरखता है भैया और क्या कहैं।'

'आखिर बता तो।'

बात ये है भैया कि हमारे बापू जग खरचीले आदमी रहे। परिवार भी हमारा बहुत बड़वारा रहा। दुइ बिटियन का बियाव भी किहिन ओही में कर्जा हुइ गया। महाजन घर-दुआर सब लैलिहिस। हमरे बापू अपनी जिन्दगी में ऊ न छुड़ाय पाए। जब मरे लगे तो बोले—'बेटा तुम हमार सराध तेरही चाहे न किहेव लेकिन अपने पुरखन की देहरी महाजन के हाथ ते जरूर छुटाय लिहेव, जब तक ई न होई, हमरी आत्मा का शान्ती न मिली।' आज आठ बरसन से हम ओही के लिए रुपया जुटाए रहेन है। देखौ कब भगवान ऊ दिन दिखावत है। एही के वास्ते धरम-अधरम सब किया, दीन-इमान सब छोड़ दिया।'

'तुम्हें कुल चाहिए कितना रुपया ?'

'नौ सौ भैया।'

'और है कितना तुम्हारे पास ?'

'पान सौ पन्द्रा।'

'अच्छा बाकी मैं दूँगा, तुम अपना घर छुड़ा लेव।'

'सच ! भैया सच !!' कहकर बरारू ओमप्रकाश के पैरों में लिपट गया।

× × ×

पन्द्रह रोज बाद बरारू अपना सुखा हुआ मुँह लिए हुए फिर ओम के सामने आ खड़ा हुआ।

'क्यों रे घर छूट गया तेरा ?'

बरारू धम्म से वहीं बैठ गया, उसके नेत्रों से आँसू बहरहे थे, बड़ी देर में उसने कहा—नहीं भैया।

'क्यों ?'—ताज्जुब से ओम ने पूछा।

गला साफ करके बरारू बोला—महाजन कहता है भैया, कि तुझ पर अब ब्याज समेत हमारे चौदह सौ रुपये निकलते हैं, पूरे दे तो घर छूट सकता है।

'तो वह रुपये वापिस ले आया है न ?'

'वह तो उसने पहिले ही ले लिये थे तब अपना खाता निकाला था।'

———

घर की रानी

जब मेरी छोटी भाभी नई-नई ब्याह कर आईं और जनवासे में पहली बार उन्हें देखा, तो वे मुझे बहुत ही अच्छी लगीं। उनका मुझे यह अच्छा लगना सन्देहजनक बिल्कुल न था क्योंकि उस समय मैं बालक ही था, मुश्किल से किशोरावस्था के निकट पहुँच पा रहा था। अपने यहाँ का यह तरीका है कि नई बहू के आने पर चूँकि वह पर्दा करती है बड़े-बूढ़े तो उससे बोलते नहीं हैं छोटे देवर वगैरह ही उसकी खिदमत में रहते हैं—पानी के लिये खाने के लिये पूछने के वास्ते। एक तो यह मेरी ड्यूटी ही लगाई गई ; दूसरे मुझे भाभी अच्छी लगीं, मैं उनका बिन दामों का दास हो गया। शादी कनौजियों की थी, दक्षिणा-दहेज पर झगड़ा होना अवश्यम्भावी था' विशेषतः जबकि भाभी' के बाबा कट्टर कनौजिया थे, पुराने, घिसे हुये और हमारे यहाँ की बारात में भी कुछ इस क्षेत्र के मल्ल इकट्ठे हो गये थे जो बड़े भइया के लाख ;मना करने के पर भी हर मामले में ताल ठोंकने को तैयार रहते थे। भाभी के बाबा जितनी की चीज देते थे उसकी चौगुनी कीमत बताते थे और हमारे यहाँ के लोग उसकी एक बटे सोलह आँकते थे। फलस्वरूप बड़ी गरमा-गरम बहसें होती थीं। ये बहसें भाभी के विदा हो आने के बाद तक चलती रहीं। भाभी की विदा रात में जनवासे में हो आई थी, क्योंकि दूसरे दिन का दिन अच्छा न समझा गया था और हम लोग दूसरे दिन सुबह चलनेवाले थे। दोनों पार्टियों में बहस जेवर पर चल पड़ी, कन्या-

पक्षवालों ने कहा—'जेवर आठ सौ रुपये के हैं।' मुझे आज्ञा हुई —जाओ, अपनी भाभी से जेवर माँग लाओ। भाभी सब जेवर पहने हुए थीं। मुझे ही यह अप्रिय कार्य करना पड़ा कि जाकर उनसे जेवर उतारने को कहूँ। सो मैंने कड़ा दिल करके कहा। भाभी ने जेवर उतार-कर दे दिये। उनकी देख-भाल हुई, हमारी पार्टीवालों ने उनके मूल्य लगभग दो सौ के आँका। जेवर मेरी ही मार्फत लौटा दिये गये, भाभी ने उन्हें फिर से पहन लिया। हम लोगों के चलने की तैयारी हो गई, और हम लोग लारियों पर आ बैठे। भाभी के बाबा विदा करने आये, किसी ने उन्हें भर दिया कि बारातियों ने जेवरों का मूल्य दो सौ आँका है। गम खाना उनके भी स्वभाव के विरुद्ध था। उन्होंने फिर ललकार दी, कौन कहता है कि जेवर आठ सौ से कम के हैं। बारात के एक सज्जन बोले—हम लोग कहते हैं। आप किन्हीं चार भले आदमियों को बुलाकर दिखवा लीजिये। अगर वे कह दें कि जेवर आठ सौ के हैं तो हम मानेंगे। मुझे फिर आज्ञा हुई—'जाओ' जेवर ले आओ अपनी भाभी से।

'जब मैं भाभी के पास गया तो डाँटे जाने के कारण नहीं बल्कि इसलिए कि भाभी को इतना कष्ट हो रहा है और वह भी मेरी मार्फत, मेरी आँखों में आँसू भरे हुए थे। मैं सोचता था, भाभी हम लोगों को कितना ओछा समझती होंगी कि पैसे-पैसे के लिए इस कदर बहस की जा रही है। भाभी ने मुझे इतनी दुःखपूर्ण मुद्रा में देखा तो हाथ पकड़-कर अपने पास बैठा लिया और प्यार से बोलीं—'क्यों क्या बात है ?'

मैं अब अपने आपको न रोक सका, फूट पड़ा। बचपन में ही माता-पिता के मर जाने के कारण मैं प्यार के लिए तरसा हुआ हूँ। कोई मुझसे प्यार से पेश आये तो मैं विह्वल हो जाता हूँ, अपनी दय-

नीय अवस्था पर खुद ही जैसे दयार्द्र हो उठता हूँ। मेरे मुँह से सिर्फ जेवर शब्द निकल सका।

भाभी समझ गईं, वे बोलीं—'वे लोग जेवर फिर माँगते हैं तो इसमें इतना दुखी होने की क्या बात है, ले जाओ। मैं क्या समझती नहीं हूँ कि यह घरवाले नहीं लड़ते बाहरवाले लड़वाते हैं?

जेवर पर बहस शुरू हुई। एक बाराती बोले—'मैं इन जेवरों को ढाई सौ रुपये पर बेचने को तैयार हूँ।'

मैं मन में डरा, कहीं ऐसा न हो कि यह लोग वाकई जेवर बेच ही डालें, तो मैं भाभी से क्या कहूँगा जाकर।

भाभी के बाबा बोले—यहाँ इन जेवरों के दो पैसे से लेकर दो हजार तक खरीदार न मिलेंगे। आप अपने शहर में जाकर इन्हें चाहे बेचें चाहे रक्खें। बहू आपकी है, मन आवे हजारों का खुद जेवर लाद दीजिये, मन आवे यह भी न रखिये।

× × ×

भाभी मुझे इतनी क्यों अच्छी लगीं, इसके कई कारण थे। उनकी बोली बड़ी स्नेहसिक्त थी। उनके इस गुण ने मुझे सबसे अधिक आकृष्ट किया था। हमारे घर में अब तक जितने लोग थे सब कटु, कठोर और कर्कश ही बोलना जानते थे। एक से एक इस मामले में बढ़े हुए थे। भाभी को पढ़ने-लिखने का भी बड़ा शौक था। वे सातवें आठवें दर्जे तक की अंगरेजी की भी योग्यता रखती थीं, और हिन्दी का तो उन्हें काफी अच्छा ज्ञान था। मेरी उनकी होड़ लगती। रामायण का पाठ वे इतने मधुर कण्ठ से करती थीं कि जो सुनता मोहित हो जाता। घरेलू खाना-पकाना-सिलाई में तो वे पूर्णतः कुशल थीं। उनका व्यवहार बड़ा ही सुसंस्कृत और सभ्य था और उनका रहना-ओढ़ना भी काफी

करीने का होता था। हमारे घर की अब तक की स्त्रियों में गुण थे—लड़ना और चुगली करना। उनकी तुलना में मुझे भाभी क्यों न अच्छी लगतीं।

इन छोटी भाभी का स्नेह मुझे विवाह से ही प्राप्त हो गया था, उनकी वह साफ-सुथरी सुसज्जित सौम्य मूर्ति मेरे उस मन को अच्छी नहीं लगती थी, यह मैं कैसे कहूँ; फलस्वरूप मैं दिन भर उन्हीं के पास बैठा रहता था। मेरी अभी गर्मी की छुट्टियाँ थीं और भाभी से अभी नई बहू होने के कारण मजबूरन काम न लिया जा रहा था। किन-किन विषयों पर बातचीत होती थी और वे विषय इतने विस्तृत कैसे हो जाते थे कि हम लोगों की बातचीत कभी खत्म होने को न आती थी। यही चाव बना रहता था कि सदा साथ ही बैठे रहें, मन में संजीदगी आने के साथ ही साथ मेरे लिए वे बातें आश्चर्यान्वित करनेवाली चीजें ही रह गई हैं। समय के सदुपयोग का ज्ञान उस समय तक मुझे आज कल का-सा दुनियावी न बना पाया था। भाभी का अपनी कोठरी में बैठे-बैठे मन न लगता था, इस कारण वे भी मुझे इधर-उधर जाने पर जल्दी आने की हिदायत करतीं। भाभी के बड़े-बड़े सन्दूकों में उनकी माँ ने खूब भुने खोए के बड़े ही बढ़िया पेड़े और दालमोठ रख दी थी। हम और भाभी कोठरी में बैठे-बैठे उन्हें खाते। ये दोनों चीजें ऐसी थीं जो बहुत दिन तक खराब न हुईं और चलीं। भाभी कभी-कभी मुझे खर्च करने को पैसे भी देती थीं और कभी-कभी मैं इन्हीं पैसों से कोई चीज उनके लिए चुरा-छिपाकर लाता था, क्योंकि हमारे घर में उन दिनों दो वक्त की रोटी के अलावा किसी प्रकार के जलपान अथवा बाजार की चीज आने की गुंजायश न थी।

घर का वातावरण कैसा था, यह धीरे-धीरे भाभी की समझ में आ रहा था। उन्होंने अभी तक अपने मायके में पहना-ओढ़ा और खाया-

नीय अवस्था पर खुद ही जैसे दयार्द्र हो उठता हूँ। मेरे मुँह से सिर्फ जेवर शब्द निकल सका।

भाभी समझ गईं, वे बोलीं—'वे लोग जेवर फिर माँगते हैं तो इसमें इतना दुखी होने की क्या बात है, ले जाओ। मैं क्या समझती नहीं हूँ कि यह घरवाले नहीं लड़ते बाहरवाले लड़वाते हैं?

जेवर पर बहस शुरू हुई। एक बाराती बोले—'मैं इन जेवरों को ढाई सौ रुपये पर बेचने को तैयार हूँ।'

मैं मन में डरा, कहीं ऐसा न हो कि यह लोग वाकई जेवर बेच ही डालें, तो मैं भाभी से क्या कहूँगा जाकर।

भाभी के बाबा बोले—यहाँ इन जेवरों के दो पैसे से लेकर दो हजार तक खरीदार न मिलेंगे। आप अपने शहर में जाकर इन्हें चाहे बेचें चाहे रक्खें। बहू आपकी है, मन आवे हजारों का खुद जेवर लाद दीजिये, मन आवे यह भी न रखिये।

× × ×

भाभी मुझे इतनी क्यों अच्छी लगीं, इसके कई कारण थे। उनकी बोली बड़ी स्नेहसिक्त थी। उनके इस गुण ने मुझे सबसे अधिक आकृष्ट किया था। हमारे घर में अब तक जितने लोग थे सब कटु, कठोर और कर्कश ही बोलना जानते थे। एक से एक इस मामले में बढ़े हुए थे। भाभी को पढ़ने-लिखने का भी बड़ा शौक था। वे सातवें आठवें दर्जे तक की अंगरेजी की भी योग्यता रखती थीं, और हिन्दी का तो उन्हें काफी अच्छा ज्ञान था। मेरी उनकी होड़ लगती। रामायण का पाठ वे इतने मधुर कण्ठ से करती थीं कि जो सुनता मोहित हो जाता। घरेलू गायन-वादन-नृत्य में तो वे पूर्णतः कुशल थीं। उनका व्यवहार बड़ा ही सुसंस्कृत और सभ्य था और उनका पहनना-ओढ़ना भी काफी

हाँ, हाँ—मैंने कहा। भाभी के किसी भी काम को मैं एक पैर से करने को तैयार रहता था। यद्यपि इस काम के लिए हामी भरते समय मुझे इस बात का भय अवश्य हुआ कि घरवालों को यह मालूम हो जाएगा तो अच्छा न होगा। यों भाभी के पास चप्पल अच्छे खासे थे, पर उनका मन ही तो था। इधर इस मामले में घरवालों का भी कोई बीच न था, रुपये भाभी अपने खर्च कर रही थीं पर मैं जानता था कि लोग किसी की इच्छा को जरा भी बढ़ावा देने को तैयार न थे। इसमें उन्हें अपने एकतंत्र शासन का अपमान मालूम होता था।

खैर मैं गया, चप्पल ले आया और भाभी ने उन्हें पहनकर खुश होते हुए, अपनी स्नेह-दृष्टि से मुझ पर अमृत उड़ेल दिया। मैं निहाल हो गया।

न जाने कौन-सी दीवारें कान लगाये हुए थीं, न जाने कौन से जासूस कोने में छिपे हुए थे, दूसरे दिन बड़ी भाभी ने छोटी भाभी के सन्दूक की तलाशी ली, बड़े भाई साहब के इजलास में मुकदमा पेश हुआ, फलस्वरूप मुझ पर मार पड़ी और छोटी भाभी बहुत बुरी तरह डाँटी गईं।

खैर, एक दिन भाभी का भाई उन्हें विदा कराने आ गया, और ब्याह की पहली विदा में ही ससुराल के ऐसे-ऐसे अनुभव लेकर भाभी अपने मायके गयीं।

× × ×

दूसरी बार जब भाभी हमारे यहाँ वापिस आईं तो उन्हें ससुराल का असली मजा मालूम हुआ। ससुराल से जब लड़की मायके जाती है तो नादान मायके वाले अपने लाड़-प्यार में उसे हाथों-हाथ लेते हैं। कोई काम करने को नहीं कहते, फलस्वरूप वह और भी काहिल हो जाती

खेला ही था। लड़की होने के कारण अपने भाई से उनके माता-पिता ने उन्हें घटकर कभी न माना था। उन्होंने जो चाहा था मिला था, जो इच्छा की थी वह पूर्ण हुई थी। स्नेह की कोमल पत्तियों में सेवी हुई अधखिली कली की भाँति वे पराये शासन के कटु काँटों से अपरिचित थीं। यहाँ के तीखे तेवरों और कोमलताविहीन बोलों ने ही उन्हें बतला दिया कि उनके हँसने-खेलने के वे दिन अब हवा हुए। अब उनके रूठने-मचलने पर किसी का दिल न टूटेगा, उनकी आँखों के आँसुओं पर किसी का कलेजा चाक-चाक न हो जायेगा।

उनका ब्याह मेरे जिन भाई से हुआ था, उन्हें हम लोग रज्जू भइया कहते थे। वे मुझसे पाँच बरस बड़े थे, पर अपना पढ़ना इसी वर्ष आटवें दर्जे से वे इस कारण छोड़ चुके थे कि मैं अपनी और उनकी कई दर्जों की दूरी बराबर लाँघता हुआ उनके साथ पहुँच गया था और उन्हें यह गवारा न था कि मैं और वे एक दर्जे में पढ़ें। पढ़ाई छूट जाने के कारण उनका भविष्य अन्धकारमय दिखलाई ही पड़ रहा था; उन दिनों भी घर में उनकी कोई विशेष इज्जत न थी। वे बहुत सीधे-सादे और गमखोर थे और कोई दोष न होते हुए भी उनमें नवयुवकों की वह फुर्ती और जिन्दादिली न थी। ऐसे पति को पाकर, जिनकी जीविका के साधन का भी निश्चय न था, भाभी उस समय प्रसन्न हुई थीं यह मैं न मानूँगा।

एक दिन भाभी ने मुझसे पूछा—'देवरजी, आप यह जानते हैं कि जनाने चप्पल वगैरह कहाँ मिलते हैं?'

'क्यों नहीं।'—भाभी के सामने किसी प्रकार की भी अनभिज्ञता प्रकट करना मैं नहीं चाहता था।

'आप मुझे काले कलकतिया स्लीपर ला देंगे? मैं अपने पैर की नाप आपको कागज पर दे दूँगी।'

मँझली भाभी की मान्यता उनके सम्मुख तो कुछ भी न थी, पर वे पुरानी होने के कारण घर के तर्ज-तरीके जानती थीं और इस प्रकार स्थिति में वे छोटी भाभी से ऊँची पड़ती थीं। छोटी भाभी के दुर्भाग्य से अथवा उनके अल्हड़पन के कारण इन मँझली भाभी के हृदय में भी छोटी भाभी के लिए सद्भावना न थी। कुछ बात यों भी थी कि जो बहू अपनी सास अथवा जेठानी से कष्ट पा चुकी हो, अपनी बहू आने पर उसे उससे भी अधिक कष्ट देना चाहती है, उसे अपने वे दिन नहीं याद आते जब वह सताई जाती थी। मँझली भाभी चाहती थीं, नई बहू की वही दुर्दशा हो जो उनकी हुई थी। हर नई बहू एक फड़फड़ाता हुआ कागज होती है—अल्हड़, सास-जेठानियाँ उस पर पेपरवेट का काम करती हैं, वह जंगली चिड़िया-सी होती है—स्वच्छन्द जिसके पर कतरकर सास-जेठानियाँ उसे पालतू बनाती हैं।

इधर मुझ पर भी नियन्त्रण हो गया था कि मैं छोटी भाभी के पास न बैठूँ और मैं बहुत से उन दोषों का भागी समझ लिया गया था जिनसे मैं अपनी अवस्था में परिचित भी न था। इस प्रकार छोटी भाभी घर में हर तरह से अकेली हुई जा रही थीं। उनका वह अभिनव रूप चूल्हे की आग में धीरे-धीरे झुलसा जा रहा था, अथवा अभावों की मानसिक अग्नि उन्हें झुलसा रही थी। कहाँ जब ब्याह में वे आई थीं, उनको पाउडर, हैजलीन और क्रीम के बिना देखा ही न जा सकता था, कहाँ अब काम-काम ही उनके वक्त का अधिकारी था। इस काम की बहुतायत से वे इतनी अधिक परेशान थीं कि एकाध दफा उन्होंने मुझसे कहा था—

देवरजी, मैं चाहती हूँ मुझे कभी बुखार आ जाता, कोई ऐसी बीमारी ही हो जाती कि मैं दो-चार रोज खाट पर पड़ी रह सकती तो साँस लेने की फुर्सत तो मिल जाती, पर भगवान् मेरी नहीं सुनता।' यह बात

है। यही हाल हमारी भाभी का हुआ। इस बार जब वे लौटीं तो रज्जू भइया ने एक किताब की दुकान पर हिसाब-किताब रखने की पन्द्रह रुपये की नौकरी कर ली थी।

कमानेवाले सदस्यों में सबसे कम वेतन पानेवाले की बीबी होने के नाते छोटी भाभी पर काम का भार सबसे अधिक पड़ा। आठ-नौ आदमियों की रोटी बनाने में ही उनका कचूमर निकल आता था। इसका कारण यह था कि उनके मायकेवालों ने उनकी सांस्कृतिक उन्नति पर तो ध्यान दिया था पर घरेलू शिक्षा उन्हें कम मिली थी। ऐसा न था कि वे कोई चीज बनाना न जानती थीं, शौकिया उन्होंने सब कुछ सीखा था, पर उन्हें इस सबका अभ्यास न था, इसलिए उन्हें कष्ट होता था।

एकाध कमजोरियाँ भी उनमें थीं. कच्ची उमर होने के कारण वे परिस्थितियों के अनुकूल, अपने आपको ढालना न सीख सकी थीं। अपने मायके का वही पुराना राग वे अलापे जाती थीं—'अपनें यहाँ हम सब लोग सुबह आध-आध पाव जलेबियाँ खाती थीं, आध-आध सेर दूध पीती थीं, बिना दही या खड़ी के हम लोगों का खाना न होता था।'

उस समय तक हमारे घर की परिस्थिति ऐसी थी कि इन चीजों के दर्शन या तो त्योहार के दिन होते या किसी विशेष मेहमान के आने पर। हमारे घरवालों को उनकी वे बातें अपना अपमान मालूम होती थीं।

विशेषतः हमारी बड़ी व मझली भाभी को जो और भी गरीब घर से आई थीं।

बड़ी भाभी संयुक्त परिवार के सबसे अधिक कमानेवाले व्यक्ति की पत्नी होने के नाते और फिर पद के कारण भी घर की मालकिन थीं।

मँझली भाभी की मान्यता उनके सम्मुख तो कुछ भी न थी, पर वे पुरानी होने के कारण घर के तर्ज-तरीके जानती थीं और इस प्रकार स्थिति में वे छोटी भाभी से ऊँची पड़ती थीं। छोटी भाभी के दुर्भाग्य से अथवा उनके अल्हड़पन के कारण इन मँझली भाभी के हृदय में भी छोटी भाभी के लिए सद्भावना न थी। कुछ बात यों भी थी कि जो बहू अपनी सास अथवा जेठानी से कष्ट पा चुकी हो, अपनी बहू आने पर उसे उससे भी अधिक कष्ट देना चाहती है, उसे अपने वे दिन नहीं याद आते जब वह सताई जाती थी। मँझली भाभी चाहती थीं, नई बहू की वही दुर्दशा हो जो उनकी हुई थी। हर नई बहू एक फड़फड़ाता हुआ कागज होती है—अल्हड़, सास-जेठानियाँ उस पर पेपरवेट का काम करती हैं, वह जंगली चिड़िया-सी होती है—स्वच्छन्द जिसके पर कतरकर सास-जेठानियाँ उसे पालतू बनाती हैं।

इधर मुझ पर भी नियन्त्रण हो गया था कि मैं छोटी भाभी के पास न बैठूँ और मैं बहुत से उन दोषों का भागी समझ लिया गया था जिनसे मैं अपनी अवस्था में परिचित भी न था। इस प्रकार छोटी भाभी घर में हर तरह से अकेली हुई जा रही थीं। उनका वह अभिनव रूप चूल्हे की आग में धीरे-धीरे झुलसा जा रहा था, अथवा अभावों की मानसिक अग्नि उन्हें झुलसा रही थी। कहाँ जब ब्याह में वे आई थीं, उनको पाउडर, हैजलीन और क्रीम के बिना देखा ही न जा सकता था, कहाँ अब काम-काम ही उनके वक्त का अधिकारी था। इस काम की बहुतायत से वे इतनी अधिक परेशान थीं कि एकाध दफा उन्होंने मुझसे कहा था—

देवरजी, मैं चाहती हूँ मुझे कभी बुखार आ जाता, कोई ऐसी बीमारी हीहो जाती कि मैं दो-चार रोज खाट पर पड़ी रह सकती तो साँस लेने की फुर्सत तो मिल जाती, पर भगवान् मेरी नहीं सुनता।' यह बात

जरूर थी कि उनकी पली देह थी, वे खूब स्वस्थ थीं। यही कारण था कि परिश्रम की आदी न होने पर भी यद्यपि उन पर एकदम से इतना काम पड़ गया था, पर उनके स्वास्थ्य ने धोखा न दिया था, कभी एक दिन को भी उनको बुखार न आया। सिरदर्द अथवा हरारत में हमारे घर के कार्य से बीमारी की छुट्टी न मिल सकती थी, इनका शुमार बहानेबाजी में कर लिया गया। छोटी भाभी की यह दयनीय दशा मेरे हृदय को बहुत ही दुःखी करती थी, पर मेरे दुःख-अनुभव का मूल्य ही क्या था जब मैं किसी प्रकार उनकी सहायता न कर सकता था। शब्दों द्वारा सहानुभूति प्रकट करने का अधिकार, जो हर गरीब से गरीब को प्राप्त है, मुझ पराधीन से छीन लिया गया था।

रज्जू भइया भाभी के कष्ट से परिचित थे अथवा नहीं, यह मैं कभी न जान सका। वे बचपन से ही बहुत कम बोलते थे। किसी भी परिस्थिति में विरोध का एक भी शब्द प्रकट किये बिना आज्ञापालन करते ही मैं उन्हें देखता आया हूँ। बचपन में कभी-कभी जब बड़ी भाभी हम लोगों के साथ किसी विषय में घोर अन्याय करतीं, तब मेरे नेतृत्व में ही ज्वायंट फ्रंट (संयुक्त मोर्चा) बनता था। एकाध दफा बड़े भैया की अनुपस्थिति में घर में भूख हड़ताल करने का दुस्साहस भी हम दोनों ने किया था, पर भूखा तो रहा न जा सकता, इसलिए कहीं से भी रसद प्राप्त करने का भार मुझ पर ही रहा था; अन्यथा वे बड़ी भाभी के सामने झुकने को तैयार हो जाते थे। उस समय हम लोगों का खाना-पीना, उठना-बैठना और सोना-पढ़ना एक साथ ही होता था इस कारण अगर हम आपस में लड़ते थे तो मेल भी होता था। उस वक्त हम दूसरे के सुख-दुःख के साथी थे।

जब से रज्जू भइया का विवाह हो गया था, उन्हें अपने बड़प्पन का आभास हो गया था, वे मुझसे पहले से भी कम बोलते-चालते थे। भाभी

के विषय में बात करने का तो शायद मुझे अधिकारी ही न समझते थे। उनकी मनोवृत्ति का अध्ययन कर, उनके बुझे-बुझे व्यक्तित्व को देखकर मुझे ऐसा मालूम होता था जैसे अपने सिर पड़े बोझे के प्रति वे बहुत ही चिन्तित हैं। अठारह-उन्नीस वर्ष की उम्र में ही जीविकोपार्जन के प्रश्न ने जैसे उन्हें खिलने के पहले ही मुर्झा दिया था, युवा बनने के पहले ही वृद्धावस्था के दरवाजे पर ले जाकर खड़ा कर दिया था।

ऐसे सीधे-सादे, गऊ, भइया भाभी के दुख को जानकर भी कभी सिर उठायेंगे, घर के कुप्रबन्ध अथवा कार्य-के विषम विभाजन का विरोध करेंगे, इसकी मैंने कभी स्वप्न में भी आशा नहीं की थी।

हमारे घर की यह रीति थी—भोजन करते समय भोजन की और उसके साथ भोजन बनानेवाली की आलोचना करना। जो जितने बड़े थे, वे उतनी ही तीव्र आलोचना करते थे। यहाँ तक कि मैं भी अपनी सम्मति प्रकट करने से बाज नहीं आता था। मॅझले और रज्जू भइया इस ओर अधिक ध्यान न देते थे। इसका कारण या तो यह कहा जाता था कि उन्हें इसकी तमीज नहीं है, या यदि भोजन उनकी पत्नी का बनाया हुआ होता, तो यह कहा जाता कि बीबी के गुलाम होने के कारण उनकी हिम्मत पत्नी के विरुद्ध एक शब्द कहने की नहीं होती।

उस दिन शाम को घर में कोई तरकारी न होने के कारण खाली दाल-रोटी छोटी भाभी बना रही थीं।

बड़े भइया खाने आये। दाल में इस कदर ज्यादा नमक था कि वे बहुत नाराज हुए, थाली उन्होंने अलग पटक दी और बिना खाये ही उठ गये। बाजार से उन्होंने दूध मॅगवाकर पी लिया। मैंने दाल छुआ-छुआकर रोटी खा ली। बड़ी भाभी अचार वगैरह लेकर आईं और खाना शुरू किया। उनका लेक्चर साथ में चलता जाता था—(बड़े भैया की ओर संकेत करते हुए वे बोलीं) 'इतना मर-मरके

कमाते हैं, सबका पेट भरते हैं, पर उनके लिए एक चीज ठीक नहीं बन सकती है, बेखाये उठ गये, 'तुम्हारा क्या गया।'

छोटी भाभी बोलीं—मैंने तो नमक उतना ही डाला जितना रोज डालती हूँ, समझ में नहीं आता कैसे इतना ज्यादा हो गया।

बड़ी भाभी बोलीं—'अभी निकालकर बाहर की जाओ—अपना-अपना करना पड़े तो सब अच्छा करोगी। यह जान-बूझकर शरारतें तो इस मारे होती हैं कि इतने जनों का बनाना होता है, पर यह समझ लो कि खाने के लाले पड़ जायँगे, जब अलग होओगी। यह न समझो कि तुम्हारे जो पन्द्रह रुपये आते हैं उनमें गुजर हो जायगा।

—'गुजर बसर करनेवाला तो भगवान है, आदमी नहीं। आप समझती हैं कि आप करती हैं तो गलत है।'

बड़ी भाभी के तन-बदन में आग लग गई। 'जबान चलाती है चुड़ैल' कहती हुई वे छोटी भाभी पर बरस पड़ीं। उनके बाल पकड़ उन्हें चौके के बाहर घसीटकर कर दिया, दो-चार घूँसे भी लगाये।

रज्जू भइया के आने पर बड़ी भाभी ने उनसे फरियाद की- माँ (सास) के मर जाने के बाद से मैंने तुम लोगों को पाला-पोसा था, तो इस लिये पाला था कि तुम्हारी बीबी आकर बातें सुनाये। मैं क्या जानती थी कि तुम ऐसे बीवी के गुलाम निकलोगे, नहीं मैं भी अपना अलग रहती।

रज्जू भइया ने आव देखा न ताव जाकर छोटी भाभी को बहुत बुरी तरह टोका।

उस दिन से मन ही मन रज्जू भइया के मन में भी विरोध की अग्नि पैदा हो गई, इसका उनके शान्त रहने पर भी आभास हो गया। वे और भी गुमसुम हो गये और चिन्तित दिखलाई पड़ने लगे। हँसी की रेखा भी उनके मुख पर दिखलाई न देती। न जाने क्या सोचा करते।

बड़े भइया की तबीयत खराब रहती थी। वे छुट्टी लेकर हवा बदलने बाहर चले गये थे। बड़ी भाभी अब घर की सोलहों आने मालकिन थीं। छोटी भाभी ने अब तक उनका आधिपत्य पूर्णतया स्वीकार किया था इसलिए उन्होंने उनकी विजय फिर शुरू की। दोनों वक्त खाना बनवाना और उनके खाने का वक्त आने के पहले लड़-झगड़कर उन्हें चौके के बाहर कर देना और खाना न खाने देना यह रोज की बातें हो गईं।

छोटी भाभी को आये दस-ग्यारह महीने हो चुके थे, बिदा के लिए उनके भाई आये। बड़ी भाभी की मंशा बिदा करने की न थी, उन्हें शक था, छोटी ने यहाँ की बुराई करते हुए चिट्ठी लिख दी है इसलिए ये लोग बिदा कराने आये हैं। रज्जू भैया ने बिदा की इजाजत दे दी। कहा—'रोज झगड़ा होता है इससे अच्छा है कुछ दिनों के लिए बला दूर हो।

छोटी भाभी मायके चली गईं।

बड़ी भाभी ने इसको बहुत बुरा माना, कहा—'यह घर के मुखिया हो गये, इन्होंने अपनी बात ऊपर रखी। यह खुद-मुख्त्यार हो गये, मेरी बात टाल दी। अच्छी बात है।' उनका चक्र चला।

छोटी भाभी के जाने के बाद से ही रज्जू भइया के कष्ट भी शुरू हुए। उन्हें नौकरी पर जाने के वक्त खाना न मिल पाता। जान बूझकर तैयार न किया जाता था। नौकरी से लौट आने पर खाना उनके लिए बचता न था या बचता तो बहुत कम, कभी दाल नहीं तो कभी तरकारी नहीं। आजिज होकर रज्जू भइया ने भाभी को चिट्ठी लिखी कि मैं बिदा कराने आता हूँ। उन्हें उत्तर सभवतः ऐसा मिला—मैं वहाँ आऊँगी तो शायद इस बार जीती ही न बचूँगी। क्या तुम यहाँ नहीं आ सकते? यहाँ भी तुम्हें नौकरी मिल सकती है, शायद उससे अच्छी मिल जाय।

हम लोग थोड़े में ही बसर करेंगे पर रोज-रोज की हाय-हाय किच-किच न रहेगी।

रज्जू भइया की समझ में यह बात आ गई। वे हमारा घर छोड़कर अपनी ससुराल चले गये। मुझे शक है, बड़े भइया अगर होते, उनसे डाँटकर एक बार कह देते तो न जा सकते। जिन्होंने अपने ब्याह के बाद भी बड़े भइया के हाथ की मार, बिना उफ किये, बिना आँख उठाये खाई थी उनमें इतने साहस की मुझे आशा न थी।

× × ×

रज्जू भइया अपनी ससुराल में जाकर बस गये, या पत्नी के कहे में आकर उन्होंने अपने घरवालों को छोड़ दिया, इस तरह की भावना सभी लोगों के मन में उनके प्रति थी। मेरे मन में यह भावना बिलकुल न थी ऐसा मैं न कहूँगा। अपने समाज में और किसी की शरण लेना उतना बुरा नहीं समझा जाता था जितना ससुराल की शरण लेना। विशेषतः इस कारण कि वहाँ पत्नी पति पर हावी हो जाती है और स्त्री को पैर की जूती समझनेवाले लोग इसकी अनुमति कैसे दे सकते हैं। यह तो इधर ही कुछ दिनों से वामपक्ष जोरदार हुआ। और स्त्री की आज्ञा सर्वोपरि समझना फ़ैशन में दाखिल हो गया है।

भइया-भाभी के कानपुर चले जाने पर हम लोगों को उनका हाल तभी मालूम हो पाता जब वे पत्र लिखते या कोई हम लोगों का परिचित कानपुर से आता जाता। मुझे तो वर्षों वे लोग देखने को न मिले।

भाभी के भाई मर चुके थे, उनके पिता का पहले ही देहान्त हो चुका था, वहाँ भी ऐसी कोई आमदनी तो थी नहीं जो बैठे गुज़र होता। रज्जू भइया ने एक स्टेशनरी की दूकान की। कुछ रुपया उनके पास इस कारण इकट्ठा हो गया था कि बड़े भैया ने उनकी तनख्वाह अलग

जमा करवा दी थी, वे छोटे की कमाई खाने के पक्ष में न थे। दूकान तरक्की तब करती है जब कुछ दिन उसका मुनाफा उसी में लगाया जाय। जब उसमें से शुरू से ही रुपया निकलने लगता है, वही गुजर-बसर का साधन होता है, तो पूँजी दिन पर दिन कम होती जाती है और दिवाला निकल जाता है। छोटे भइया की दूकान का भी यही हाल हुआ।

इस बार उन्हें मिल में नौकरी करनी पड़ी। पूरा न पड़ने के कारण एकाध ट्यूशन भी वे करते थे।

एक रोज़ बड़े भइया के पास तार आया—छोटी भाभी की हालत बहुत खराब थी, वे मुझे देखना चाहती थीं।

मैं वहाँ पहुँचा। जिस गरीबी की दशा से लोग वहाँ रह रहे थे, उसे देखकर मुझे बहुत दुख हुआ। खाने-पीने का पहनने-ओढ़ने का स्टैण्डर्ड-(स्तर) काफी नीचे गिर गया था। जीवन से उत्साह की किरण जैसे गायब हो गई थी। छोटी भाभी लड़कपन की उन बड़ी-बड़ी बातों को बिलकुल भुला चुकी थीं। भविष्य के लिए अब मंसूबे न बँधते थे, वह अन्धकारमय मालूम होता था। भाभी अब अक्सर बीमार रहती थीं। यह सुनकर मुझे उनकी बात याद आई—देवरजी, काश कभी मुझे बुखार आ जाता। छोटी भाभी को दिल की धड़कन की बीमारी हो गई थी, वे बहुत कमजोर हो गई थीं।

मुझे देखकर वे जिस तरह रोईं इससे मुझे अपने प्रति उनके अटूट स्नेह का पता लगा। मैं भाभी के पास रहा। उनका इलाज चलता रहा और सौभाग्य से वे अच्छी हो गईं।

एक दिन उन्होंने मुझसे कहा—'देवरजी, तुम देखते होगे यहाँ हमें बहुत तंगी है, पर यहाँ रोज-रोज की हाय-हाय नहीं है। रूखा-सूखा खाते हैं और सन्तोष रखते हैं। तुम्हारे जिन भैया ने मुझे वहाँ बहकाये

जाने पर बुरी तरह पीटा था यहाँ कभी फूल की छड़ी से भी नहीं छूते। मुझे और क्या चाहिये।

अपने-अपने झँझटों में फँसे रहने के कारण दूसरे के दुःख-दर्द देखने का किसे अवसर मिला है! कानपुर यों बहुत दूर न था, फिर भी तिनके की ओट पहाड़ की ओट। रज्जू भइया और भाभी को देखने का अवसर अब क्यों नहीं आता। जब कभी जाता हूँ यह देखकर जरूर दुःख होता है कि भैया जीवन में तरक्की न कर सके, कितना सिकुड़कर इन लोगों को रहना होता है। फिर छोटी भाभी की एक बात को देखकर श्रद्धा होती है कि अब उन्होंने लम्बी-लम्बी बातें हाँकना बिलकुल भुला दिया। 'तेते पाँव पसारिये जेती लाँबी सौर' के अनुसार वे आचरण करने लगी हैं और 'जब आवे संतोष धन सब धन धूरि समान' उनका मूल मन्त्र हो गया है।

मुझे उनसे सदैव स्नेह ही मिला है। मेरे विवाह, इत्यादि में घर के सब पुराने झगड़ों को भुलाकर वे जिस उत्साह से सम्मिलित हुई हैं वह अवर्णनीय है। ऐसी स्नेहमयी भाभी के लिए सदैव सुख और कल्याण की कामना मैंने की है पर मेरी शुभकामनाएँ उनका कवच न बन सकीं। एक-एक करके चार लड़कियाँ भाभी के हुईं, कमजोर हो जाने के कारण हर बार वे जैसे मर-मरकर जीती थीं, पर लड़कियाँ एक भी न बचीं। कलेजे पर जैसे एक-एक दाग होता गया, जब बड़ी लड़की बारह वर्ष की होकर जाती रही तो जैसे उनका दिल ही टूट गया। एक लड़का जैसे उनके जीवन में प्रकाश फैलानेवाले रवि की भाँति आया। बड़े उत्साह से उसका कनछेदन-मुंडन हुआ। भाभी एक बार फिर हरी भरी दिखलाई पड़ीं पर वह सुख भी क्षणिक ही सिद्ध हुआ। इस बार मुसीबत और भी जल्दी आयी।

इस आघात को भाभी कैसे बर्दाश्त कर गईं, पागल क्यों न हो गईं, इस पर सभी को आश्चर्य हुआ।

भाभी अब भी जिन्दा हैं पर शरीर से ही। आत्मा जैसे उनकी इस सांसारिक जीवन से ऊपर उठ गई है। गृहस्थी उन्होंने छोड़ी नहीं है। कर्तव्य-पालन के कारण ही भइया से वे कहती हैं—तुम दूसरा ब्याह कर लो तो मैं अपनी कर्तव्य-चिन्ता से मुक्त हो जाऊँ। पर भइया से यह नहीं हो पाता।

और मैं जब भी छोटी भाभी की बात सोचता हूँ तो भारतीय सभ्यता और संस्कृति के उन पंडों का आदर्श बरबस मेरे मन-प्राण को घेर लेता है जो भारतीय नारी को घर की रानी कहते हैं और उसके त्याग और तपस्या की प्रशंसा करते नहीं अघाते।

खादी की चादर

लखनऊ की ग्राम-उद्योग प्रदर्शनी में वैसे तो सभी दुकानों पर बहुत भीड़ होती थी। परन्तु कला-भवन के पासवाली खादी की दूकान की भीड़ का कुछ ठिकाना न था। नवयुवकों के झुण्ड के झुण्ड वहाँ से हटते ही न थे, इसका कारण उक्त स्टाल पर इन्दु के विक्रेता होने का था। इन्दु का सौन्दर्य स्वाभाविक सौंदर्य नहीं है वह ऐसी विशेषता रखता है जो आमतौर से नहीं पाई जाती। उसका सौंदर्य प्रकाश के किसी केन्द्र की भाँति ऐसा चमकता हुआ है कि देखनेवाले को यह मालूम होता है कि जैसे वह यह सब देखने को प्रस्तुत न था। इन्दु को देखने के बाद यह आप पर निर्भर नहीं है कि आप उसे रूपवती मानें या न मानें, आपको उसे सुन्दर मानना ही पड़ेगा, ऐसा उसका प्रभाव पड़ता है।

जोगिया रंग की साड़ी पहने स्टाल पर इन्दु खड़ी ही रहती है। नवयुवक आते हैं इस मेजपोश का दाम पूछते हैं, उस रूमाल का, उस बेग का और अन्त में कुछ न कुछ लेकर ही जाते हैं। यह खरीदारी मन की नहीं होती बरबस होती है। कुछ का नित्य आने का नियम है, कुछ वहाँ जाकर अधिक बातचीत करना चाहते हैं। जहाँ तक ठीक होता है इन्दु आँखें नीची किये जवाब देती जाती है, परन्तु जहाँ ज़रा भी अनुचित बात किसी के मुँह से निकली, इन्दु उधर मुँह करके एक बार देख भर लेती है। फिर किसी की हिम्मत नहीं कि कुछ कह सके।

खादी की चादर

रोज की भाँति इन्दु अपने स्टाल पर खड़ी थी। चार, साढ़े-चार बजे का समय था, काफी धूप थी, और फेफड़ों में धूल पहुँचाने के लिए ही जैसे जोर शोर की हवा चल रही थी। अभी बाबू क्लास के आने का वक्त न हुआ था, इन्दु सामने बड़ी दूर किसी बिन्दु पर आँखें गड़ाये थी, बेकार होने पर जो मानसिक कष्ट होता है वह उसे भी सता रहा था कि सामने से कोई दुकान की ओर आता हुआ दिखाई दिया। ऊपर से दृष्टि हटाकर प्रसन्नता से उसने ग्राहक की ओर देखा। गेहुँवाँ रंग का इकहरे बदन का युवक है, बदसूरत नहीं कहा जा सकता। मदरासी स्लेटी रंग की जीन का कोट पहने, सफेद साफा बाँधे, धोती टखने से ६ इञ्च ऊँची पर सफेद, पैरों में चमरौधा जूता है।

दूकान पर आकर खड़ा हुआ और सामने रखी हुई चीजों पर नजर दौड़ाई। इन्दु ने बिना बोले नित्य की भाँति रूमाल, मेजपोश इत्यादि दिखाये। युवक ने सीधे स्वाभाव से कहा—'इसमें कोई चीज हमारे काम की नहीं है।' इन्दु को अपनी गलती मालूम हुई, ग्रामीण रूमाल और मेजपोशों का क्या करेगा। एक खादी की बूटेदार चादर जिसमें झालर लगी हुई थी, निकालकर दिखाई। युवक ने चादर की ओर ललचाई हुई दृष्टि से देखकर कहा—"इसकी क्या कीमत है?"

'डेढ़ रुपया।'

'कुछ कम नहीं होगा?'

'यहाँ मोल-तोल नहीं होता एक दाम है।'

अपनी टेंट में से रुपया निकालते हुए युवक ने कहा—'हमने सुना था; लखनऊ में बड़ा मोल-भाव होता है, इसीलिए पूछा?'

इन्दु ने बातचीत का आनन्द सा लेते हुए कहा—'यह कांग्रेस

की दूकान है।' युवक चुप रहा। इन्दु ने पूछा—'पहली दफा लखनऊ आये हो?'

'हाँ।'

चादर लेकर युवक सीधा नुमायश के फाटक की तरफ बढ़ा और बाहर निकल गया जैसे और आस-पास कुछ है ही नहीं। इन्दु उसे देखती रही, आँखों से ओझल हो जाने तक। तब मन को काम मिला 'कैसा सीधा-सादा युवक है, आडम्बरहीन, बातों से कैसी सरलता टपकती थी। थोड़ी देर में बाबू लोग आवेंगे, सूट-बूटधारी, दीजिए, दिखाइए की धूम मचा देंगे, पर कलुषित हृदय की भावनायें सदा साथ रहेंगी। यह बेचारा इस तरह नुमायश से सीधा क्यों चला गया, जैसे और पैसे न थे या कुछ और देखना न चाहता था। मैंने गल्ती की जो इतनी कीमती चादर दिखा दी।'

कुछ ग्राहकों के आने से इन्दु का ध्यान उधर बँट गया।

× × ×

इन्दु के पिता बाबू रामचरित्रसिंह पहले मिलेट्री-डाक्टर थे। सन् २१ के आन्दोलन में नौकरी छोड़कर बैठ गये। बाराबंकी जिले में दो मौरूसी गाँव और लखनऊ में तीन-चार मकान। उनके घर का खर्च इस जायदाद से मजे में चल जाता है। काफी समय हो जाने पर भी देशभक्ति का भूत सिर पर से उतरा नहीं। नेता बनने के इच्छुक नहीं हैं, परन्तु नगर कांग्रेस को उनसे पर्याप्त सहयोग प्राप्त है। उच्च शिक्षा के समर्थक हैं और सामाजिक कुरीतियों के शत्रु। उनके यह सब विचार इन्दु में पाये जाते हैं। इस कारण वह उनकी विशेष स्नेह-भाजी है।

इन्दु आई० टी० कालिज—थर्ड इयर में पढ़ती है। कांग्रेस की

वह बहुत दिनों से स्वयंसेविका है और अपनी शिक्षा और कांग्रेस दोनों का कार्य साथ-साथ सुचारु रूप से चलाती है। ग्राम उद्योग-प्रदर्शनी में उसका पूर्ण सहयोग पाकर व्यावस्थापक-गण उसे सौंपे हुए कार्यों की ओर से काफी निश्चिन्त थे।

× × ×

सालभर बाद—

इन्दु अपने फाइनल इम्तहान से निपट चुकी है। अभी रिजल्ट आउट नहीं हुआ। लखनऊ में बड़ी तेज गर्मी पड़ रही है, साथ की सखी-सहेलियाँ कोई मंसूरी चली गई हैं, कोई नैनीताल। इन्दु का जी बहुत घबराता था, कमरे में पड़ी-पड़ी करवटें बदला करती थी। एक रोज पिताजी और महेन्द्र के सामने जी न लगने की बात कही।

महेन्द्र बोले—'अब इन्दु भी और लोगों की देखा-देखी पहाड़ जाना चाहती है, और बहाना करती है कि जी नहीं लगता। मैं भी तो इसी घर में रहता हूँ, इससे ज्यादा घूमता फिरता नहीं हूँ, लेकिन मुझे कोई ऐसी शिकायत नहीं है।'

इन्दु ने हँसकर कहा—'आप तो बुकवर्म (किताबी कीड़े) हैं। थीसिस वगैरह सब जा चुकी फिर भी कोई न कोई किताब लिये बैठे ही रहते हैं। मुझसे आपकी तरह हरदम किताबों से मगज नहीं मारते बनता।'

बाबू रामचरित्र सिंह हँसकर बोले—'सुनो भाई, अगर तबीयत वाकई में नहीं लगती और दोनों पहाड़ जाना चाहो तो पहाड़ चले जाओ, या वैसे बहुत दिनों से कोई गाँव भी नहीं गया है वहाँ

जाओ तो वह भी अच्छा। उधर खर्चा ही खर्चा है इधर आमदनी भी है।'

महेन्द्र—'और आप?'

'मैं तो भाई इस वक्त यहाँ से न हटूँगा।

'वैसे अगर इन्दु आग्रह करे तो मैं चला तो जाऊँगा, लेकिन एक शर्त है।' महेन्द्र ने कहा।

इन्दु—'वह क्या?'

महेन्द्र—'मेरा शिकार तुम्हीं को बनाना पड़ेगा।'

इन्दु—'माफ कीजिये, आपको चलना हो चलिये, खुशामद तो मुझसे होगी नहीं।'

महेन्द्र—'अच्छा बाबू, अब यह इतना कह रही है, तो मैं इसकी खातिर गाँव जाना मन्जूर किये लेता हूँ। वैसे मेरी कोई मंशा न थी।'

दूसरे रोज महेन्द्र और इन्दु गाँव के लिये रवाना हो गये।

× × ×

प्रातःकाल हो रहा था। एक लिपे पुते मिट्टी के छोटे से मकान के दुमंजिले पर दो खाटें पड़ी थीं। शीतल और सुगन्ध वायु बह रही थी। आँखें खोलते हुए महेन्द्र ने आवाज दी—'ए पगली, कहीं घूमने चलना है या यों ही सोती पड़ी रहेगी।'

इन्दु अपनी खाट पर बैठती हुई बोली—'खुद तो पड़े हुए हैं और 'पगली पगली' चिल्ला रहे हैं, सवेरे-सवेरे न राम न रहीम।'

दोनों बातें करते हुए घूमने निकले, थोड़ा-थोड़ा अँधेरा था। घूमकर खेतों से आते हुए छोटे छोटे [illegible] के बीच से लौट रहे थे कि एक जगह

जोर-जोर से रोने-चिल्लाने की आवाज़ सुनकर इन्दु ठिठक गई। महेन्द्र ने कहा—'क्या है इन्दु ? चलना।'

इन्दु ने कहा—'देखो कोई रो रहा है। इधर आओ देखें क्या बात है ?

नौकर ने कहा—'गाँव के एक ठाकुर केर बिटवा बेमार रहे, दिक हुई गई रहै, अभई देखौ पूछत हन।'

नौकर पूछने चला, इन्दु अपने आप आगे बढ़ गई। चौपाल में बैठे हुए एक वृद्ध फूट-फूटकर रो रहे थे। इन्दु चौपाल के पास ही खड़ी हो गई। नौकर ने आकर कहा—'बिटिया, ऊ ठाकुर साहब केर बिटवा मरि गवा।'

महेन्द्र—"चलो इन्दु।"

इन्दु—'अयँ।'

इतने में लोग लाश उठाए हुए आते दिखाई दिये। दूर ही से कफन देखकर इन्दु का हृदय धड़कने लगा। 'अरे यह तो वही चादर है जो नुमाइश में मुझसे वह युवक ले गया था। लाश के निकलते ही बहुत से गाँव के लोग साथ हो लिये। गाँव के मालिक इन्दु और महेन्द्र को वहाँ खड़े देखकर बहुत से लोग राम जुहार करने को रुक गये। इन्दु के पूछने पर लड़के के चाचा ने रोते हुए कहा—'बिटिया, बड़ा सुशील लड़का था, गाँव भर की आँखों का तारा। पारसाल नुमायश से यह चादर लाया था तब से इसे लिये बैठा रोया करता था। लोग लाख पूछते थे पर किसी को कुछ न बताता, धीरे-धीरे बुखार रहने लगा, बड़ी दवादारू हुई लेकिन कुछ असर न हुआ। बुखार बस गया, खटिया पर पड़ा रहता था पर आँखों के सामने से यह चादर न हटाता था, मरते दम तक इसे अपनी आँखों के सामने रखा। न जाने उस खादी की चादर

में ऐसी क्या बात थी। दम निकल गया तो सबकी राय से यही चादर उढ़ा दी गई।'

इतना कहकर लड़के का चाचा सिसक-सिसककर रोने लगा।

इन्दु लाश के साथ चली जा रही थी। उसका हृदय असीम वेदना के कारण चीत्कार कर रहा था और सारा संसार उसे अन्धकारमय प्रतीत हो रहा था। 'खादी की चादर' 'खादी की चादर 'केवल यह एक शब्द उसके मस्तिष्काकाश में किसी पखेरू की भाँति चक्कर लगा रहा था।

जीवन

इलाहाबाद के खेमामाई मोहल्ले में तारा बाबू कमलानन्द के मकान की कोठरी में अपनी जिंदगी के दिन काटती थी। बाबू कमलानन्द का मकान काफी बड़ा था, उस गरीब को अपने सीधे हँसमुख और सादे स्वभाव के कारण उसमें रहने भर को काफी जगह थी। उसके पति की मृत्यु बसरा की लड़ाई में हो गई थी। उसके जेठ उसे १०) मासिक देते थे, इसी से तारा की जीविका का प्रबन्ध होता था।

दयावान्, दयासागर, दयासिंधु आदि विशेषणों से पुकारे जानेवाले लोगों की दृष्टि में न्यायी परमेश्वर ने उसका सौभाग्य-सिंदूर उसके संसार में आने के ठीक १६ वर्ष बाद ही और विबाह के एक ही वर्ष बाद छीन लिया था। सौन्दर्य उसका शुभ्र चम्पे की भाँति विकसित था। यद्यपि सौभाग्य-सिंदूर, उसके मस्तक से पुँछते ही उसके मुख पर वेदना की कालिमा की स्पष्ट मुद्रा अंकित थी। पति के पहले सास-ससुर और माता पिता को खोकर तारा संकीर्ण दृष्टिवालों के लिए परिवारहीन हो गई थी। माता-पिता की मृत्यु के बाद ही तारा, बाबू कमलानन्द के यहाँ जाति के रईस, परोपकारी और सज्जन होने के कारण चली गई थी और गत चार वर्षों से वहीं जगह पाये थी।

तारा का स्वभाव एकान्तप्रिय था, अपने काम से काम, न ऊधो का लेना, न माधो का देना। किसी के यहाँ न आना न जाना। हाँ; वह दुश्मनी

भी किसी से नहीं रखती थी। यदि उसे अब भी संसार में फिक्र और थी तो वह रमेश की। रमेश बड़े दूर के रिश्ते से तारा का भाई लगता था; परन्तु उन दोनों के हृदय में एक दूसरे के प्रति प्रेम शायद सगे भाई-बहिन से भी अधिक था।

× × ×

रमेश सुन्दर, सुशील और मिलनसार युवक सेन्ट्रल बैङ्क के दफ्तर का एक क्लर्क था और अपनी पत्नी सहित सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता था उनके सुखों को द्विगुणित करने के लिए एक सुन्दर शिशु उन्हें प्राप्त था। जीवन-नौका और भी अठखेलियाँ करती हुई चल पड़ी थी।

सहसा नाव के इस वेग में एक करारा धक्का लगा, सृष्टि के सूत्रधार के कर्मचारी, कराल काल ने अपने कठोर हाथों को बढ़ाकर रमेश से उसकी पत्नी को छीन लिया। फूलों से भरा हुआ नन्दन कानन सा संसार रमेश के लिए तप्त बालूमय रेगिस्तान हो गया। अपनी पत्नी की तेरहवीं करने के बाद वह खाट पर ऐसा पड़ा कि कमर ही लग गई।

× × ×

सवेरा हो गया था। रात को रसोई के बर्तन माँजकर स्नान किया और फिर तारा-पूजन करने को बैठी थी, परन्तु हृदय बार बार उचट जाता था, सोचती—"रमेश की कैसी बुरी दशा है, संसार के सुख और आनन्द की झाँकी की झलक देखने के पहले ही उसका सुख छीन लिया गया। हाय! वह अभागा शिशु बिना माता के कैसे रहेगा, हे भगवन्! इस अबोध बालक ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था, जो तुमने उसे इतना कठिन दंड दिया?"

करुणा के इन्हीं विचारों में ओतप्रोत, अलंकारहीन सौन्दर्य को एक सफेद धोती में छिपाने का असफल प्रयत्न करके तारा भगवान् में ध्यान

लगाने वढ़ी थी, परन्तु असफलता ने उसका पीछा वहाँ भी न छोड़ा और वह निराश होकर उठ खड़ी हुई। पंचपात्र का पानी फेंक तारा कुशासन लपेट ही रही थी कि किसी के पैरों की चाप सुनाई दी। घूमकर देखा—रमेश का नौकर बुद्धू था। आखें आँसुओं से डबडबाई और रात की नींद न मिलने से अलसाई हुई थीं। आते ही भर्राई हुई आवाज से गला साफ करने का प्रयत्न करते हुए बोला—'बिटिया !'

तारा ने सरल स्वभाव से करुणापूर्ण स्वर में पूछा—

'क्यों बुद्धू रमा बाबू कैसे हैं ?'

बुद्धू के आँसू न रुक सके। अविरल गति से अश्रु-धारा बहाता हुआ बोला—'हालत अच्छी नहीं है बिटिया, जल्दी चलो तुमकाँ बुलाइन हैं।'

तारा का हृदय जोर ज़ोर से धड़कने लगा, अरगनी से चादर खींच कर सीधे दरवाजे के पास जा पहुँची, 'चल जल्दी बुद्धू' उसने आवाज दी। बुद्धू उसकी ओर देखकर बोला—

'बिटिया, कोठरी का ताला न बन्द करिहौ, चप्पल न पहिनिहौ ?'

तारा दरवाजे से बाहर निकलती हुई बोली—'मेरा जी ठीक नहीं है जल्दी चलो। क्या चप्पल और चट्टी लगाये है।'

रास्ते में बुद्धू को तारा के संग चलने में दौड़ना पड़ा।

× × ×

दुमंजिले मकान के एक कमरे में एक खटिया पर पेट के बल पड़ा हुआ रमेश कराह रहा था 'आह ! आह !! मरे ! मरे !!

तारा रमेश की पीड़ा को देखकर रो पड़ी—'रमा ! मेरे रमा !!'

तारा की आवाज सुनकर रमेश ने करवट ली और दर्द को सहन करके उसने तारा को बैठने का संकेत किया, फिर सहारे से वह तकिये पर उठ बैठा। कमरे के दूसरे कोने में अन्ना रमेश के बच्चे को लिए

उसके रोने को बन्द करने को 'ऊँ-ऊँ' करके असफल प्रयत्न कर रही थी। रमेश ने स्वस्थ होने का प्रयत्न करते हुए कहा—'बहि...न अब अंतिम समय आ गया है।'

तारा ने उसके मुँह पर हाथ रखते हुए कहा—

'नहीं भइया, ऐसा नहीं कहा करते हैं।'

परन्तु रमेश ने फिर अपनी बात शुरू की—'नहीं बहिन मेरी दशा बहुत बुरी है। अब दो चार मिन...ट का मेहमान हूँ। इस समय जो मैं उठकर बैठा हूँ; यह दीपक के बुझने के पहिले की ज्योति है। तुम इससे भ्रम में न पड़ो। मैंने तुम्हें इस समय दो बातों के लिए बुलाया है: एक तो अंतिम भेंट के लिए।'

रमेश अपनी बात बड़े वेग से कहता चला जा रहा था, ठीक उसी मुसाफिर की तरह जो गाड़ी छूटने से पहले घड़ी देखते हुए अपने सम्बन्धियों अथवा मित्रों से आवश्यक बातें बड़ी जल्दी-जल्दी कहता है। तारा की अश्रुधार उसके पलकों और कपोलों को सींच रही थी। रमेश कहता चला जा रहा था—'दूसरे इसलिए कि मेरे न रहने के बाद मेरे 'जीवन' की देख-रेख करने के लिए कोई भी न रह जायगा। मुझे तुम्हें उसी का भार सौंपना है। हालाँ कि मैं...उन नालायक बापों में से हूँ, जो अपनी सन्तान के लिए कुछ भी छोड़ नहीं जाते हैं। फिर भी 'जीवन' को तुम्हें सौंपकर मुझे कोई चिन्ता न रह जायगी।'

तारा की दशा उस समय अकथनीय थी, उसका मुख दुःख और वेदना का केन्द्र बना हुआ था। रमेश ने इतना कहकर नौकरानी से रोते हुए 'जीवन' को ले लिया और खाट पर बैठी तारा के पैरों के पास उसे लिटा दिया और बोला—'जीवन, बुआ।'

तारा के बच्चे को उठाते ही जीवन चुप हो गया और रमेश की ओर देखने लगा।

रमेश ने एक शांति की साँस लेते हुए कहा—'जीवन, बुआ' इस बार बच्चे ने भी गोद में इधर-उधर पैर चलाते हुए किलकारी मारकर कहा—'बुआ।'

इसी समय रमेश ने कराहकर कहा—"बस" तकिया हटाकर खाट पर गिर पड़ा—'आह! दर्द-बड़े, जोर का दर्द।"

तारा का दिल फटा जा रहा था, परन्तु वह बेवसी से रमेश की ओर देख रही थी, सहसा रमेश ने दो हिचकियाँ लीं और सब समाप्त हो गया। तारा चिल्ला पड़ी, बच्चा चीख उठा, बुद्धू और नौकरानी भी ढाढ़ें मार-मारकर रोने लगे। लोग इकट्ठा होने लगे और शव को खाट से उतार-कर ले जाने का उपक्रम करने लगे।

× × ×

जीवन के आने से तारा के जीवन में एकाएक परिवर्तन हुआ। वह एकान्तवासिनी के स्थान पर पूर्ण रूप से गृहस्थिन बन गई। अब उसके पास दो खर्चे थे, एक अपने डलिका और दूसरे जीवन के दूध कपड़े इत्यादि का। अब उसका काम उन दस रुपयों से न चल सकता था, क्योंकि वह जीवन को भरसक अच्छी तरह रखना चाहती थी, इस खर्चे को उठाने का उसने तरीका सोचा।

वर्षों से रखी हुई सिलाई की मशीन में आज फिर तेल दिया, फिर से उसकी सफाई हुई, फिर जाकर मुहल्ले भर में दो चार घर कह ई—'बहिन कुछ कपड़ा आदि सिलाना हो, तो मुझे ही देना।"

औरतों ने कहा—'ओ हो, तारा बहुत दिनों में आई। ये भाई का लड़का है क्या?'

तारा ने कहा—हाँ बहिन अब यह बेचारा भी मेरे संग आ पड़ा है, परमात्मा करे वह दिन आवे, जब वह हाथ पैर का हो, मुझसे जो कुछ बनेगा सो तो इसके लिए करूँगी ही।"

एक घर से दो जम्फर सीने को मिले और दूसरे से कुर्ता। तारा दिन भर मशीन खटर-खटर करती रही और शाम को दोनों जम्फर खत्म करके उठी। इस बीच में जीवन कभी मशीन की आवाज सुनता 'कभी घुटने के बल चलके सब बर्तन खड़बड़ करता और कभी बुआ की पीठ के सहारे घुटनों के बल खड़ा हो जाता। तारा उसका मुख चूम-चूमकर कुछ खिलौने उसके सामने रखकर खेलने को बैठा देती। भूखे होने पर जब जीवन चिल्ला चिल्लाकर शोर करता तो उसे दूध पिलाकर गोद में सुला लेती और काम करने लग जाती।

इस प्रकार अविराम गति से परिश्रम करने पर जब तारा को सिलाई के पैसे मिलते तो वह बड़ी प्रसन्न होती। इनसे वह अपने जीवन के लिए कपड़े, खिलौने और मिठाई मँगवाती।

इस प्रकार दिन पर दिन, मास पर मास और वर्ष पर वर्ष व्यतीत होने लगे और पूर्व जन्म अथवा आधुनिक किसी अज्ञात प्रेम-बन्धन द्वारा संयुक्त इन दोनों प्राणियों का निर्वाह एक-दूसरे के सहारे होने लगा।

जीवन तारा के पालन-पोषण के सहारे जीवित था और तारा जीवन के स्नेह के सहारे।

वे-लम्बे सत्रह वर्ष व्यतीत हो गये। तारा अब युवती से अधेड़ हो गई और जीवन शिशु से युवावस्था को प्राप्त हो रहा है। अब वह एफ०-ए० प्रथम वर्ष का विद्यार्थी है—मेधावी, सुशील और उन्नत हृदय।

बोर्ड से १६) की छात्रवृत्ति पाता है और एक ट्यूशन करता है। इतना उसके और तारा के खर्च के लिये काफी है, अपनी बुआ को अब वह अधिक परिश्रम नहीं करने देता; और अगर कभी अधिक काम करते हुए देख लेता है तो ऐसी मीठी झिड़की सुनाता है कि फिर तारा उसके सामने काम नहीं करती।

× × ×

सन् १९३२ का साल था, कांग्रेस-आन्दोलन की चारों ओर धूम थी। कानून तोड़ने, विदेशी कपड़ों और वस्तुओं के बहिष्कार का जोर था। जनता का उत्साह और जोश उमड़ा पड़ता था।

आये दिन सार्वजनिक स्थानों में सभायें होतीं। कानून तोड़कर बनाये हुए नमक की एक एक पुड़िया सौ सौ रुपये को बिकती। ऐसे-ऐसे प्रभाव-शाली व्याख्यान होते कि हृदय उछल जाता।

ऐसा ही एक दिन था। शायद किसी स्वर्गवासी नेता के जन्मदिन के उपलक्ष में चार बजे शाम से प्रोग्राम था। कांग्रेस-दफ्तर के पास से जुलूस उठकर शहर के विशेष भागों में जाकर लौटने पर पार्क में एक सार्वजनिक सभा होने का उपक्रम था।

नियत समय पर कांग्रेस-आफिस से जुलूस निकला और शहर के विविध भागों में घूमता हुआ जार्ज टाउन की सड़क पर पहुँचा। हजारों की संख्या में युवक व विद्यार्थी थे। जुलूस बड़े उत्साह से कौमी नारे लगाता, महात्मा गांधी की जय बोलता और झन्डे के पवित्र गीत का पाठ करता उत्साह से चला आ रहा था। आगे थी विद्यार्थियों की टुकड़ी, जिसमें सर्वप्रथम झंडा लिए हुए जीवन था। वह गीत की प्रथम कड़ी उच्च स्वर से गाता, फिर सारे जुलूस के लोग गगनभेदी स्वर से गाते।

सहसा इस कार्य में विघ्न पड़ा। पुलिस की एक बड़ी टुकड़ी ने आ-कर मार्ग रोक लिया और लोगों को आगे बढ़ने को मना किया और

जनता से तितर-बितर हो जाने को कहा; परन्तु जुलूसवालों ने मानो सुना ही नहीं। वे स्तब्ध खड़े रहे। पुलिस के एक अफसर ने इस बार फिर जुलूसवालों को हट जाने की सरोष स्वर से आज्ञा दी। जुलूस पर इसका कुछ प्रभाव न पड़ा। हाँ, आस-पास लगी भीड़ में से किसी एक गुण्डे ने एक पत्थर पुलिस के अफसर पर फेंका। उस पर क्रोधित अफसर ने अपने सिपाहियों को बंदूक ठीक करने की आज्ञा दी। गुण्डे और तमाशबीन जनता भाग निकली, पर जुलूस निःस्तब्ध और निःश्चल था। उन मूर्ति सदृश खड़े हुए अग्र भाग के वीर और नवयुवकों को देखकर— उनकी आन और शान को देखकर—पुलिस-अफसर का रक्त खौल उठा। गोली चली। जुलूस से भी बड़े-बड़े लोग भाग निकले, किसी ने जीवन को भी खींचा—

'भाग! भाग!!' पर वह उसे ढकेल अकड़कर खड़ा हो गया। खद्दर के कुर्ते के बटनों को खोलकर गोली का आवाहन करते हुए उसने कहा—'भारतमाता की जय।'

शब्दों के मुँह से निकलते ही एक गोली सीने को भेदकर निकल गई। खून का फव्वारा छूट पड़ा।

भारतमाता का लाल अस्त-व्यस्त होकर गिर पड़ा।

× × ×

सन्ध्या समय पार्क में जीवन की मृत्यु के शोक में एक सभा हुई। सहृदय और देशसेवी नेताओं ने उस भारत माँ के वीर लाल की वीरता का हिचकियों के साथ वर्णन करते हुए शोक प्रकट किया। अन्त में बड़ी गम्भीरता के साथ तारा उठकर आई और बोली—

'भाइयो और बहिनो! मुझे इस तरह अश्रुहीन नेत्रों से अभग्न हृदय देखते हुए आप में कुछ को मेरे जीवन के स्नेह पर शंका होती होगी, परन्तु यह बातें मुझेही तक रहने दीजिए। मैं यह पूछती हूँ, क्या

यह शोक की बात है कि हम गुलामों में भी स्वतन्त्रता की बलिदेवी पर मर मिटनेवाला एक युवक पैदा हो गया। मैं तो यह कहती हूँ कि यदि मेरे इस समय पाँच पुत्र होते तो मुझे उस समय पाँच गुना अभिमान होता, आनंद होता, जब वे बलिवेदी पर इसी भाँति चढ़ जाते। जीवन ने हमें अपना जीवन बनाने का और उसका अन्त करने का और जीवन सफल करने का कैसा सुन्दर मार्ग बताया है, फिर उसके निधन पर दुःख क्यों किया जाय।' जनता उस दुःख में भी ताली बजा उठी।

× × ×

उस दिन से तारा ने अपने जीवन को जीवन के बताए हुए मार्ग पर व्यतीत करने का निश्चय किया और वह इस समय देश की सच्ची, परिश्रमशील सेविकाओं में से है।

पाक कफन

अपनी वह महान् अट्टालिका और अशेष सम्पत्ति अपने बेटे-बेटियों पर छोड़कर उस गन्दी गली के एक छोटे से मकान में शबनम रहने लगी। तब की और अब की शबनम में जमीन-आसमान का अंतर हो गया। नगर व समाज की वह गन्दी नाली गंगा की सी पवित्र हो गई। पहले की शबनम में पवित्रता कम थी, कालिमा अधिक; अब की शबनम ओस सी स्वच्छ और उज्जवल थी। उसने अपना नाम जीवन के अंतिम भाग में चरितार्थ करके दिखाया था। अब वह पाँचों वक्त की नमाज पढ़ती, रूखा-सूखा भोजन करती और जमीन पर चटाई बिछाकर लेट रहती थी। अपने जीवन-निर्वाह के लिए उसने कसीदे और जरदोजी का काम बनाकर दूकानदारों को देना प्रारम्भ किया था; जिसकी आमदनी से उसे अपनी गुजर-बसर करने के अलावा कुछ दीन-दुखियों की मदद करने के लिए भी बच जाता था।

आज की शबनम को देखकर यह कौन ख्याल कर सकता है कि यह वही शबनम है, जिसने कभी हजारों घरों को तबाह किया था, जाने कितने रईसों को दर-दर का भिखारी बना दिया था और अनगिनती नवोढ़ाओं को पति के रहते हुए वैधव्य दुःख झेलने को विवश कर दिया था। शबनम में सौंदर्य और संगीत एक ही साथ न जाने कितना एकत्रित हो उठा था; और उसे रूप की हाट में पाकर अनगिनत इन्द्रियलोलुप मनुष्य अपनी प्यास बुझाने आने लगे थे। धीरे-धीरे वही हुआ जो उस

प्रकार के सौदे में सदा होता आया है; शबनम अपना यौवन लुटा बैठी और वे अपना धन। शबनम के पास कोठियाँ हो गईं, मोटरें हो गईं, ज़मींदारी हो गई और उसके वे भ्रमर कौड़ी-कौड़ी को मुहताज हो गये। शबनम की लड़कियाँ और लड़के नवाबज़ादों का सा जीवन बिताने लगे। जब कि अवस्था का सूर्य मध्याह्न से टलने लगा था; शबनम के जीवन में एक परिवर्तन ही नहीं, घोर परिवर्तन। शबनम अपनी वह भौतिक-वादिता छोड़कर धर्मपरायण हो गई।

शबनम ने अपने इस आन्तरिक भाव-परिवर्तन के विषय में कभी भी किसी से कुछ न कहा था। अपनी उन हमजोलियों से भी नहीं, जिन्होंने उसके साथ ही इस जीवन में पदार्पण किया था; और जो अब उसके समान ही अवस्था का एक अंक समाप्त कर चुकी थी। इसीलिए जिस दिन शबनम ने अपना पेशा बन्द कर दिया, उसके बराबरवालियों में हल-चल मच गई क्योंकि सब यही देखती आई थीं, कि जिसने एक बार इस कार्य को प्रारम्भ किया था, उसने अपनी ओर से इसे कभी न छोड़ा था; लोगों ने ही उसे चाहे छोड़ दिया हो और शबनम जिस दिन बिना अपनी सम्पत्ति का एक पैसा लिए खाली हाथ चरित्र, यौवन और रक्त से अर्जित उस सम्पत्ति को छोड़कर उस गंदे घर में चली गई थी, उस दिन तो उसकी वे समवयस्क हमजोलियाँ मुँह ताकती ही रह गईं; न उससे कुछ पूछ सकीं न कह सकीं।

शबनम के लड़के-लड़कियाँ सब भले थे। एक दिन शबनम अपने घर से तड़के ही निकल गई। घर के लोग सोकर भी न उठ पाये थे, सिर्फ बूढ़ी नौकरानी ही जान पाई थी कि वह कहाँ गई है। लड़के-लड़कियों के उठने पर घर में वावेला सा मच गया। नौकरानी से मालूम होने पर पता लगाते हुए वे लोग वहाँ पहुँचे। माँ को उस छोटे से घर में बिना किसी समान के देखकर उन लोगों को बड़ा दुख लगा।

लड़कियाँ तो तीनो की तीनों ही रो रही थीं। आखिर लड़का उसके पैरों को पकड़कर बोला—अम्मीजान! आखिर हम लोगों से क्या खता हुई जो आप हमें इस तरह छोड़कर चली आईं?'

शबनम बोली—'बेटा, मेरे चले आने की वजह तुम लोगों की कोई गल्ती नहीं है, बात यह है कि मैं उस गुनाहों की जिंदगी को ही छोड़ देना चाहती हूँ, जिसमें इतने दिनों से पड़ी हुई थी।'

बड़ी लड़की आँखें नीची करके बोली—उसे तो आप पहले ही छोड़ चुकी थीं, फिर घर छोड़कर आने की क्या जरूरत थी?"

'बात यह है बेटी, कि अब मैं पाक जिन्दगी गुजारना चाहती हूँ।'

'तो वहाँ रहते हुए तुम्हें पाक जिन्दगी गुजारने के लिए कौन मना करता है—छोटी लड़की ने कहा।

'सच तो यह है कि आपके दिल से हम लोगों की मुहब्बत ही उठ गई है।'

'नहीं, मेरी बेटी, तुम्हारा यह गलत ख्याल है। जिन्दगी भर पाप किया, पाप की कमाई खाई, कुछ दिन तो अलग रह लूँ। अल्लाह के सामने आखिर क्या मुँह लेकर जाऊँगी?'

'मेरी समझ में नहीं आता कि आखिर वहाँ रहते हुए यह क्यों नहीं रह सकता'—छोटी लड़की ने कहा।

जानना ही चाहती है तो सुन, वह पाप की कमाई है। उससे सबाब (पुण्य) का काम जैसा किया वैसा न किया, फिर मेरा इरादा हज करने जाने का और वहाँ से आबे जमजम में पाक कफन अपने लिए लाने का है, और ये काम ऐसे हैं, जिनमें एक पैसा भी ऐसा-वैसा न लगना चाहिए।

'तो फिर जब वह घर ही नापाक है तो हमी लोग उसमें क्यों रहें—

'नहीं, तुम्हारे रहने में कोई हर्ज नहीं है; तुम्हें जो कुछ मिला है, मुझसे मिला है, मैंने उसे किस तरह कमाया, यह जानना तुम्हारा काम नहीं है, तुम्हारे लिये वह हर तरह अच्छा है।'

लड़के-लड़कियाँ भी असली बात समझ गईं। वे कुछ नादान न थीं। यद्यपि प्रेमवश वे अपनी माता से आग्रह करती रहीं, पर समझती थीं कि उनकी माँ ने सही रास्ते पर कदम रक्खा है, और जैसी लगन उसके दिल में लग गई है, उससे साफ मालूम हो गया था कि वह अपने इरादे से न फिरेगी, आखिरकार वे सब हारकर चले आये।

एक बड़े मियाँ, पुराने पापी वहीं से जा रहे थे, बड़ी लड़की को देखकर बोले—'आज सुबह बी शबनम को इस मकान में आते हुए देखा था, यहाँ कैसे आकर रही हैं, क्या घर में झगड़ा हो गया क्या?'

'जी नहीं, उनका इरादा हज करने का है, इसलिए उन्होंने वह घर छोड़ा है।'

'ओ हो!!' बड़े मियाँ खूब चमक-मटककर बोले—'सत्तर चूहे खाकर बिल्ली हज करने को चली है।'—

लड़के-लड़की शरीफ थे; फिर भी यह बात सुनकर ताव आ गया। तमककर कुछ जवाब देने ही वाले थे कि एक शरीफ वृद्ध जो उसके बगलवाले मकान के चबूतरे पर बैठे हुक्का पी रहे थे, बोले—अबे हज को चली तो उनसे तो अच्छी है, जो कब्र में पैर लटकाये हैं पर अपनी हरकतें न छोड़ीं।'

बड़े मियाँ अपना-सा मुँह लेकर चल दिये, क्योंकि छींटा उन्हीं पर था।

× × ×

पर ऐसा किया है कि आधा कफन फाड़कर दे दिया है, मेरी सलाह मानो, तुम भी वैसा ही करो।"

शबनम ने मुल्ला जी के कहे मुताबिक आधा कफन उन्हें दे दिया। अभी वह दरवाजा खोलकर बाहर गये ही होंगे, शबनम की बूढ़ी नौकरानी की लड़की रोती हुई दौड़ती आई और शबनम के लड़के से बोली—'बड़े भाई अम्मा मरी पड़ी हैं, उनकी मट्टी उठवाने का तो इन्तजाम कर दीजिए!'

शबनम के मुँह से एक ठंडी साँस निकल गई, लड़का जाने की तैयारी कर रहा था, उसने कहा—'बेटा कफन का वह टुकड़ा उस गरीब के लिए लेते जाना।'

लड़के ने कहा—'और अम्मी जान आप......'

'मेरा अल्लाह मालिक है बेटा, वह सब कुछ देखता है।'

शबनम के संचित पुण्यों का फल वह कफन लेकर उसका लड़का घर से चल दिया।

बुढ़िया को लोग उसके पाक कफन में लपेटकर चले थे, कि एक आदमी दौड़ता हुआ आया—"ए मियाँ, बी शबनम चल बसी, जल्द चलिये।"

हकीम जी

सरकारी स्कूल की अध्यापकी करने के कारण नया स्थान देखना पड़ा था। उस मकान में वह दूसरा ही दिन था कि छोटे भतीजे बिशुनू साहब को खाने में बहुत ज्यादा बेतकल्लुफी करने के कारण, दस्त लग गये। अपने मकान-मालिक से जो साथ ही में रहते थे, पूछा—'इसे किसे दिखलाऊँ?'

तो उन्होंने बड़ी सरलता से कहा—'यह पड़ोस ही में तो हकीम जी रहते हैं, उन्हें दिखला दीजिए, घबड़ाने की कोई बात नहीं है।'

मैंने जाकर हकीम जी को नमस्कार किया, उन्होंने बड़ी सरलता से मुस्कराकर नमस्ते करते हुए आदर से बैठने को कहा और पहले आये हुए मरीजों को दवा देते रहे।

हकीम जी औसत कद के आदमी हैं, तन्दुरुस्त चेहरा भरा हुआ, बड़ी-बड़ी मूछें। और बाल पक जरूर चले हैं पर बुढ़ापा जैसे उन्हें झुका नहीं पाया है। काफी फुर्ती और चुस्ती उनमें है, दौड़-दौड़कर काम किये जाते हैं।

मैंने देखा कि हकीम जी के पास मरीज काफी आते हैं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, औरत, मर्द, बुड्ढे, बच्चे जवान सभी और वे सबसे हँसते-बोलते हुए अपना काम करते चले जाते हैं। एक साहब जिनकी आँखों में कुछ तकलीफ थी, उनसे बोले—'आपको आँखें दिखाने आया हूँ।'

'हकीम जी हँसे, और बोले—'यह हिम्मत आपकी, हमारे घर में ही आँखें दिखाइयेगा।'

एक छोटी लड़की बोली—'पेट में दरद है हकीम चच्चा।'

हकीम जी ने पूछा—'कै चूहे खाये थे कल? मालूम होता है जादा खा गई।'

मेरा नम्बर आने पर हकीम साहब मेरी तरफ मुखातिब हुए,—"कहिये महाराज क्या आज्ञा है?"

मैंने नम्रतापूर्वक कहा—'मैं कल ही इस पड़ोसवाले मकान में आया हूँ..... ।'

'अच्छा! अच्छा! सुना था कि आप आनेवाले हैं। आप तो शुकुल जी के रिश्तेदार हैं न, स्कूल में मास्टर होकर आये हैं। बड़ा अच्छा है सुना था, दर्शन न हुए थे, सौभाग्य से वह भी हो गये। मेरे योग्य सेवा हो सो बताइये।'

'आपके बच्चे की तरह हूँ मैं, आपके ही सहारे इस परदेश में आ पड़ा हूँ, कृपा रखें। इस बच्चे को रात से कुछ दस्त आ गये हैं, सो कोई दवा दे दीजिये।'

'बहुत अच्छा', कहकर हकीम जी ने किशनू का पेट देख जबान देखी, नब्ज देखी और कहा—'क्यों क्या मिठाई बहुत खा ली थी क्या?'

किशनू ने अपनी आदत के अनुसार सम्मतिसूचक सिर हिला दिया।

हकीम जी दवाखाने से जाकर एक पुड़िया में दवा ले आये और मुझे देते हुए बोले—'दिन में चार दफे यह गोली पीसकर शहद में मिलाकर थोड़ा नीबू निचोड़कर चटा दीजिये। देखिये मैं अभी आया। कहकर वे अन्दर चले गये।

'अन्दर से लौटे तो एक प्याले में शहद लिये हुए थे और हाथ में एक बड़ा सा नीबू। मुझे देते हुए बोले—मैंने सोचा अब आप शहद बाजार में लेने कहाँ जायँगे फिर पता नहीं कैसा मिले। नीबू तो आजकल यहाँ मिलना असम्भव ही सा है। मैं तो बराबर सेवन करता हूँ, इसलिये लखनऊ से मँगवा रखता हूँ।

मैं तो जैसे निहाल हो गया। हाथ-पैर की काहिली अपना विशेष गुण है। बिना तरकारी खाना खाना मंजूर है पर मण्डी न जाऊँगा। कई बार तो यह हुआ है कि घर में बच्चों की तबियत खराब रही है और एकाध फर्लांग जाकर दवा न लाया हूँ। हकीम जी ने जो सब कुछ निकट ही प्रस्तुत कर दिया तो तबियत प्रसन्न हो गई। 'बड़ी कृपा की आपने—' मैंने नम्रतापूर्वक कहा। एक रुपया उनकी तरफ बढ़ाते हुए मैंने कहा—'दवा की कीमत।'

'नहीं, नहीं, बस आपकी कृपा चाहिए'—कहकर हकीम जी ने हाथ जोड़ लिये।

'क्षमा कीजियेगा, ऐसे कैसे चल सकता है?'

'चलानेवाला तो ईश्वर है,'—हकीम जी ने कहा।

मैं फिर भी रुपयेवाला हाथ बढ़ाये ही रहा तो वे बोले, इसे रख लीजिये। मैं लूँगा नहीं। आपका तो यह अधिकार है।

मेरा? मेरा कैसा अधिकार? मैंने पूछा।

'पड़ोसी का' हकीम जी बोले—नाता दूर पड़ोसी नेरे।

फिर भी आग्रह करने पर मैंने देखा कि हकीम जी को (मेरा आग्रह) वास्तव में अच्छा नहीं लग रहा है तो मैंने रुपया जेब में रख लिया। नमस्ते करके चला आया।

धीरे-धीरे मैं और हकीम जी नजदीक आने लगे और मुझे उन्हें अधिक जानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

× × ×

हकीम जी के विषय में मुझे यह मालूम हुआ कि वे आर्य-समाज के कट्टर अनुयायी थे और उसी संस्था के वे क्रियात्मक सहयोगी थे अन्य किसी राजनैतिक, या धार्मिक संस्था अथवा व्यक्ति पर जब उनका विश्वास ही नहीं था तो अनुकरण का प्रश्न ही कहाँ उठता था। आर्य-समाजियों की सी सादगी (Puratinism) उनमें कूट कूटकर भरी थी सब प्रकार के शौक और अंग्रेजियत से उन्हें चिढ़ सी थी। संगीत, नाटक व सिनेमा सब उनके लिए त्याज्य थे। मालूम हुआ था कि पहले वे अपनी भावज और भतीजे के साथ रहते थे। किसी कारण न बनी तो इनकी भावज व भतीजे ने इनके घर से निकालने का उपाय सोच निकाला। उन्होंने अक्सर मांस बनाना शुरू कर दिया। हकीम जी इसे बर्दाश्त न कर सके। वे घर छोड़कर चले आये और किराये का मकान लेकर रहने लगे।

ऐसा नहीं था कि हकीम जी ने कभी मांस-मछली खाई न थी। कायस्थ होने के कारण पहले वे यह सब खूब प्रेम से बनाते खाते थे, पर आर्य-समाज के प्रभाव में आते ही एक बार जो उन्होंने उसकी तरफ से मुँह फेरा तो फिर नजर न की। दृढ़ इच्छाशक्ति हकीमजी का विशेष गुण था। एक बार जो तय कर लेते थे, उस पर पूरी तौर से अमल करते थे। चाहे जो हो जाय।

हकीम जी का लड़कपन कुछ विशेष अच्छा न बीता था। माता-पिता के न रहने पर भाभी ने उन्हें काफी कष्ट दिया था। भाई के न रहने पर तो वह इनके पीछे ही पड़ गई थीं कि कहीं हिस्सा न बँटाने लगे। मिडिल

स्कूल के पाँच-छः दर्जे तक पढ़कर हकीम जी कचहरी में नौकर हो गये थे। उनकी उस नौकरी के विषय में भी यह प्रसिद्ध था कि उन्होंने कभी भी वहाँ एक पैसा रिश्वत का नहीं लिया। कचेहरी का वातावरण अपने स्वभाव के बिल्कुल विपरीत पाकर हकीम जी ने उसे छोड़ दिया। उनके किसी होशियार मित्र ने उन्हें अपना साझीदार बनाकर एक कपड़े की दूकान खोली। कुछ दिन वह दूकान चली भी अच्छी। हकीम जी की सब लेई-पूँजी उसी में लगी थी इस कारण वे उसमें जी-जान से लगकर काम करते थे। बाहर कपड़ा खरीदने भी जाते और जो कुछ हो सकता करते।

उन्हीं दिनों मलेरिया फैला, खूब जोर-शोर से। शहर तो शहर, देहातों की दशा बहुत ही खराब थी। हकीम जी की दूकान पर जो ग्राहक देहात से आते थे उन्हें वह देखते कि बहुत ही परेशान हैं। डाक्टर लोग एक के चार ले-लेकर भी उन्हें ठीक दवा न देते थे। हकीम जी ने कुछ कुनैन खरीदी और पीड़ितों को मुफ्त देने लगे। बहुत लोगों को उन्होंने लाभ पहुँचाया। इसी वक्त से उनका भद्दा सा नाम 'हकीम जी सम्बोधन के पीछे ऐसा खोया कि उसका कहीं पता न लगा। देहातवाले अब अन्य बीमारियों की दवाइयाँ भी उनसे माँगने लगे थे, इसलिए उन्होंने एकाध वैद्यक की पुस्तकें इत्यादि पढ़कर बाजार से दवायें लाकर लोगों की उन तकलीफों को दूर करने का भी प्रयत्न किया। उस वक्त तक पेशे से हकीम बनने का कोई विचार हकीम जी का न था। उनकी दूकान सुचारु रूप से चल रही थी।

हकीम जी के साझीदार को न जाने क्या ईमानदारी का दौरा आया कि उन्होंने दूकान में धीरे-धीरे माल खसकाना शुरू किया और एक दिन दूकान तोड़ने की तजवीज पेश कर दी। हिसाब-किताब होने पर नकदी और दूकान का ज्यादातर कपड़ा साझीदार महोदय के हिस्से पड़ा। कुछ

धीरे-धीरे मैं और हकीम जी नजदीक आने लगे और मुझे उन्हें अधिक जानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

× × ×

हकीम जी के विषय में मुझे यह मालूम हुआ कि वे आर्य-समाज के कट्टर अनुयायी थे और उसी संस्था के वे क्रियात्मक सहयोगी थे अन्य किसी राजनैतिक, या धार्मिक संस्था अथवा व्यक्ति पर जब उनका विश्वास ही नहीं था तो अनुकरण का प्रश्न ही कहाँ उठता था। आर्य-समाजियों की सी सादगी (Puratinism) उनमें कूट कूटकर भरी थी सब प्रकार के शौक और अंग्रेजियत से उन्हें चिढ़ सी थी। संगीत, नाटक व सिनेमा सब उनके लिए त्याज्य थे। मालूम हुआ था कि पहले वे अपनी भावज और भतीजे के साथ रहते थे। किसी कारण न बनी तो इनकी भावज व भतीजे ने इनके घर से निकालने का उपाय सोच निकाला। उन्होंने अक्सर मांस बनाना शुरू कर दिया। हकीम जी इसे बर्दाश्त न कर सके। वे घर छोड़कर चले आये और किराये का मकान लेकर रहने लगे।

ऐसा नहीं था कि हकीम जी ने कभी मांस-मछली खाई न थी। कायस्थ होने के कारण पहले वे यह सब खूब प्रेम से बनाते खाते थे, पर आर्य-समाज के प्रभाव में आते ही एक बार जो उन्होंने उसकी तरफ से मुँह फेरा तो फिर नजर न की। दृढ़ इच्छाशक्ति हकीमजी का विशेष गुण था। एक बार जो तय कर लेते थे, उस पर पूरी तौर से अमल करते थे। चाहे जो हो जाय।

हकीम जी का लड़कपन कुछ विशेष अच्छा न बीता था। माता-पिता के न रहने पर भाभी ने उन्हें काफी कष्ट दिया था। भाई के न रहने पर तो वह इनके पीछे ही पड़ गई थीं कि कहीं हिस्सा न बँटाने लगें। मिडिल

स्कूल के पाँच-छः दर्जे तक पढ़कर हकीम जी कचहरी में नौकर हो गये थे। उनकी उस नौकरी के विषय में भी यह प्रसिद्ध था कि उन्होंने कभी भी वहाँ एक पैसा रिश्वत का नहीं लिया। कचेहरी का वातावरण अपने स्वभाव के बिल्कुल विपरीत पाकर हकीम जी ने उसे छोड़ दिया। उनके किसी होशियार मित्र ने उन्हें अपना साझीदार बनाकर एक कपड़े की दूकान खोली। कुछ दिन वह दूकान चली भी अच्छी। हकीम जी की सब लेई-पूँजी उसी में लगी थी इस कारण वे उसमें जी-जान से लगकर काम करते थे। बाहर कपड़ा खरीदने भी जाते और जो कुछ हो सकता करते।

उन्हीं दिनों मलेरिया फैला, खूब जोर-शोर से। शहर तो शहर, देहातों की दशा बहुत ही खराब थी। हकीम जी की दूकान पर जो ग्राहक देहात से आते थे उन्हें वह देखते कि बहुत ही परेशान हैं। डाक्टर लोग एक के चार ले-लेकर भी उन्हें ठीक दवा न देते थे। हकीम जी ने कुछ कुनैन खरीदी और पीड़ितों को मुफ्त देने लगे। बहुत लोगों को उन्होंने लाभ पहुँचाया। इसी वक्त से उनका भद्दा सा नाम 'हकीम जी सम्बोधन के पीछे ऐसा खोया कि उसका कहीं पता न लगा। देहातवाले अब अन्य बीमारियों की दवाइयाँ भी उनसे माँगने लगे थे, इसलिए उन्होंने एकाध वैद्यक की पुस्तकें इत्यादि पढ़कर बाजार से दवायें लाकर लोगों की उन तकलीफों को दूर करने का भी प्रयत्न किया। उस वक्त तक पेशे से हकीम बनने का कोई विचार हकीम जी का न था। उनकी दूकान सुचारु रूप से चल रही थी।

हकीम जी के साझीदार को न जाने क्या ईमानदारी का दौरा आया कि उन्होंने दूकान में धीरे-धीरे माल खसकाना शुरू किया और एक दिन दूकान तोड़ने की तजवीज पेश कर दी। हिसाब-किताब होने पर नकदी और दूकान का ज्यादातर कपड़ा साझीदार महोदय के हिस्से पड़ा। कुछ

गये। अनचाहा रुपया उन्हें मिलने लगा। एक मरीज ने मकान बनवाने को जमीन दे दी, बाग वगैरह भी हकीम जी ने खरीदे। मकान तो उनका बहुत ही अच्छा बना हुआ था।

× × ×

जिस समय मुझे हकीम जी को जानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ वे साठ को पार कर चुके थे, पर सिवाय बालों की सफेदी के बुढ़ापे का अन्य कोई चिन्ह उनके शरीर पर दृष्टिगोचर न होता था अपने पेशे में सिवाय एक स्थानीय एलोपैथ डाक्टर के और कोई न उसका सामना कर सकता था न किसी की इतनी आमदनी थी। उनकी योग्यता व अनुभव इस कदर बढ़ा हुआ था कि नब्ज पर हाथ रखते ही हाल बतलाने लगते थे। तपेदिक (टी० बी०) की जाँच के लिये, जिसमें डाक्टरों का बिना एक्सरे कराये काम नहीं चलता है, हकीम जी को सिर्फ नब्ज दिखला देना काफी था। आयुर्वेद, यूनानी, होमियोपैथिक और किसी हद तक एलोपैथिक का अध्यन कर चुके होने के कारण जिस बीमारी में अथवा जिस मरीज के उपयुक्त वे जिस प्रणाली को पाते उसी से वे उसका इलाज करते। इन्जेक्शन देते, छोटे-मोटे आपरेशन करते और साथ-ही-साथ सूखे के बच्चों को दागते, मैं उन्हें देखा करता था। यूनानी अथवा आयुर्वेदिक दवाइयें तो शुद्ध और सच्ची उनके यहाँ मिलने की बात के सब कायल थे।

मैं जब तब हकीम जी के यहाँ जाकर बैठता और अखबार पढ़ा करता था। पेट खराब हो जाना और मुँह में छाले पड़ जाना मेरे लिये रोज का काम है। जब तब इसके लिए हकीम जी से होमियोपैथिक दवा भी लिया करता था। एक दिन उन्होंने कहा—'इस तरह दवाई खाने से कुछ न होगा, आप सुबह टहला करें तो यह ठीक रहे।'

मैंने कहा—'बहुत अच्छा।'

'तो मैं सवेरे आवाज दूँ?' हकीम जी ने पूछा।

'हाँ, हाँ, जरूर,' मैंने उत्तर दिया, और दूसरे रोज से मैं हकीम जी के साथ सुबह पाँच बजे टहलने जाने लगा। उनके नियमपालन की दृढ़ता विचित्र थी कि बरसात के दिनों में छाता और टार्च लेकर वे टहलने जाते थे। फिर भी उनमें एक कमजोरी थी कि वे अकेले टहलने न जा सकते थे। इसलिए उन्होंने अपने कुछ साथी बना लिये थे जो हकीम जी के पास-पड़ोस में ही रहते थे। यदि किसी दिन उनमें से कोई भी न जाता तो हकीम जी भी न जाते थे। इसका कारण कदाचित् हकीम जी का धनी होना ही था। मैं कुछ दिन नियमपूर्वक हकीम जी के साथ जाता रहा, पर नींद मुझे दिन भर घेरे रहती। मुझे रोज नींद की कुर्बानी देकर अँधेरे में ही उठ पड़ना अपने शरीर ही नहीं, आत्मा के साथ भी बड़ा अत्याचार सा लगता। विशेष छुट्टी के दिन तो देर तक सोने का मेरा मन बहुत ही मचलता था। इसलिए मैंने यह निश्चय किया कि मैं इतवार को घूमने न जाया करूँगा। हकीम जी इस तरह की कोई बात सुनने के लिये तैयार न थे। अगर उनका कोई साथी अस्वस्थ होने के कारण या किसी अन्य मजबूरी के वश में होकर किसी दिन टहलने न जाता था तो भी हकीम जी विश्वास न करते थे वे यह उसकी काहिली और बहानेबाजी ही समझते।

शनिवार को कह देने पर भी कि मैं कल घूमने न जाऊँगा, हकीमजी न माने, उन्होंने इतवार को मुझे आवाज़ दी ही, और जब मैंने कह दिया कि मैं आज न जाऊँगा और न गया तो हकीम जी नाराज हो गये और उन्होंने इस संयम भंग के लिए मुझे कभी क्षमा न किया मेरे लाख क्षमा माँगने पर भी। अन्य किसी प्रकार अपनी नाराजी उन्होंने प्रकट न

की । उन्होंने मुझे बुलाना छोड़ दिया । उसके साथी मुझे बुला लेते तो बुला लेते वे बिना बुलाये ही चले जाते । बोलने-चालने या दवा इत्यादि देने में उनके कभी कोई अन्तर न आया ।

सवेरे पाँच बजे घूमने जाते, साढ़े छः पौने सात तक लौटकर आते । आते ही अपने हाथ से वह अपनी बड़े शौक से पाली हुई भैंस और गाय की सानी करते थे । फिर स्नान इत्यादि से निवृत्त होकर वे पूजा पर बैठते । नौ बजे के करीब उनकी पूजा समाप्त होती तब वे एक नीबू पानी में निचोड़कर पीते, थोड़ा दूध पीते और बाहर आकर मरीजों को दवा देने लगते । इस काम से उन्हें बारह एक बजे तक छुट्टी मिलती । तब वे भोजन करते । उनका भोजन बड़ा ही सादा होता । घर का घी, पालक वगैरह हरे साग । खटाई-मिठाई, मिरच वगैरह से वह बहुत दूर रहते थे और जिस किसी को यह सब खाते देखते थे, उसे चटोरा कहने से न चूकते थे । भोजन के बाद कुछ देर आराम करते । फिर बाहर बैठे-बैठे अखबार या कोई पुस्तक वगैरह पढ़ते रहते, या अगर कोई दवाई बनानी होती तो बनाते । शाम को उनके यहाँ फिर भीड़ इकट्ठा हो जाती, कुछ लोग खाली बैठकबाजी के लिए भी आते थे, जिन्हें पान इत्यादि खिलाकर हकीमजी सम्मान भी देते थे । सात साढ़े सात बजे तक इस समय वह बैठते । मरीज इस समय अधिक न आते थे, इसलिए कभी कभी राजनीति अथवा धार्मिक समस्याओं पर बातचीत भी होती । इसके बाद भोजन करके हकीम जी कभी-कभी अपने रेडियो पर खबरें सुनते और जल्दी ही सो जाते । सूर्यास्त के बाद वे मरीजों को देखने बहुत कम जाते । रात में तो हाल पूछकर ऊपर की खिड़की से दवाई की पुड़िया डाल देते, दरवाजा भी न खोलते, बाहर कौन जाता । उन्हीं के दम से मोहल्ले में एक चौकीदार रहता था ।

मेरा और हकीम जी का साथ सुबह घूमने जाते वक्त ही ज्यादा होता था। उस समय उनसे तरह-तरह की बातें सुनने को मिलतीं। मैंने यह नोट किया था कि इतनी अवस्था हो जाने पर भी हकीम जी में आवश्यक गम्भीरता आई थी। वे आवश्यकता से अधिक बात करते थे और अपने साथियों से निम्नकोटि का परिहास भी करते थे। बुराई सुनने और करने में उन्हें खूब मजा आता था। पुराने आदमी होने के कारण वे जानते भी बहुतों को थे और किसी का भी नाम लेने पर वे बड़े मजे में उसका कच्चा चिट्ठा बता चलते थे कि किसका किसकी पत्नी से सम्बन्ध है, कौन किसकी जायदाद दबा बैठा है और कौन धाकड़ ब्राह्मण होते हुए भी कुलीन बन बैठा है। किसका विवाह नहीं होता था तो भुलावे से विधवा ब्याह करके ले आया है और किसकी लड़की को किससे हमल रह गया है, इसकी सबकी जैसे हकीम जी के पास एक लम्बी फेहरिश्त रहती थी। कोई भी मरीज ताकत की दवा ले जाकर यह निश्चित नहीं रह सकता था कि हकीम जी किसी रोज किसी के सामने बातों की झोंक में उसकी पोल न खोल देंगे।

अच्छाई और बुराई के विषय में अपनी कुछ धारणा बनाकर बीसों वर्ष से उन्हीं पर अमल करते-करते हकीम जी में कुछ ऐसी हठधर्मी आ गई थी कि अपने विचारों के आगे किसी और की सुनना भी उन्हें गवारा न था। फलस्वरूप वे मन ही मन ज्यादातर लोगों की कार्य-प्रणाली, विचारधारा व चरित्र से असन्तुष्ट रहते थे। अपने लड़के से जो डाक्टरी पढ़ता था, उन्हें असन्तोष रहता था कि वह व्यर्थ के बहाने बनाकर उनसे अनाप-शनाप रुपये मँगाया करता है और खूब ठाट से रहता है। बहू के विषय में वह कहते थे कि कई हजार का गहना बनवा देने पर भी वह अधिक की ही कामना किया करती है। लड़की दमाद को

वे कुछ मासिक खर्च भेजा करते थे, घी भेजते थे, पर कहते थे कि वे फिर भी उनसे सन्तुष्ट नहीं रहते। अपनी पत्नी की शिकायत वे कम करते थे, कभी-कभी यह जरूर कहते थे कि वह चाहती है कि लड़का-लड़की के पीछे मैं तबाह हो जाऊँ। उनसे एक बात बहुत जबर्दस्त मैंने सुनी थी और वह यह कि आजकल दुनिया में प्रेम ऊपर से नीचे की ओर है नीचे से ऊपर की ओर नहीं, यानी माता-पिता बच्चों के लिए मरे जाते हैं पर लड़के उन्हें पैसा देने का साधन-मात्र समझते हैं, स्नेह किसी प्रकार नहीं करते। सबके प्रति असन्तोष रहने पर भी वह अपनी सी करने में कभी न चूकते थे। अपने ऊपर उनका ख़र्च बहुत कम था पर परिवार के सब सदस्यों को जो आराम और खाना कपड़ा वे चाहते थे, मिलता था।

उनका यही व्यवहार परिवार के बाहर अन्य लोगों से रहता था। वे किसी के रवादार न होना चाहते थे। यहाँ तक कि अपने लड़के के विषय में कई बार कह चुके थे कि मुझे इसकी कमाई के एक पैसे की आवश्यकता नहीं है। यह डाक्टरी पास करके अगर यहीं प्रैक्टिस करना चाहेंगे तो मैं इनको दूसरा घर बनवा दूँगा और कहूँगा, वहीं रहो वहीं प्रैक्टिस करो। अपना कमाओ खाओ, मुझे तुम्हारा कुछ न चाहिए, जो बनेगा उस वक्त भी करने को तैयार रहूँगा। कभी किसी के यहाँ वे एक दाना न ग्रहण करते। इसमें वे कान्यकुब्जों से भी अधिक कट्टर थे। यहाँ तक कि कभी-कभी तो मुझे उनकी यह बात जैसे सबको हेय समझने वाली अथवा अपने को सबसे श्रेष्ठ समझनेवाली मालूम होती थी। किसी के सामने किसी चीज के लिए हाथ फैलाना वे बहुत ही बुरा समझते थे यद्यपि दूसरों के लिए वे सब कुछ त्याग करने को तैयार रहते थे। यों भावुकता के दौरे से उन्हें कभी-कभी आते थे, कभी कोमल

वृत्तियों के और कभी कठोर। एक समय वे व्यक्ति के लिये सब कुछ त्याग कर सकते थे दूसरे समय जरा-सी चीज के लिए टका-सा जवाब दे सकते थे। मानसिक संतुलन की कुछ कमी उनमें अवश्य थी, इस कारण हृदय से बिल्कुल कोमल होने पर भी वे अपनी जीभ द्वारा कभी-कभी लोगों को दुखी कर देते थे। हकीम जी की उस कठोरता को जो सहन कर जाता था, उसे उनके उस मक्खन से हृदय के दर्शन होते थे, बहुत से लोग उस शुष्कता से घबराकर उनसे दूर रहना ही ठीक समझते थे।

हकीम जी का एक पड़ोसी जो कि बोतल के पानी से शौक रखता था, एक बार अजीब तरह से उनके पीछे पड़ गया। वह जब पीकर आता तो चिल्ला-चिल्लाकर खूब ही उन्हें गाली देता। कहता यह मेरे मकान पर कब्जा जमाना चाहता है। यही कह-कहकर वह खूब गालियाँ देता। हकीम जी ने उसे नशा उतरने पर कई बार समझाया तब वह चच्चा-चच्चा कहने लगता; फिर शाम को वही हरकत करता। यह भी कहता कि मैं इनका खून कर डालूँगा। एक रोज रात को जब वह गालियाँ दे रहा था, हकीम जी अपने नौकरों के साथ लाठी लेकर निकले और दरवाजा तोड़कर उसकी खूब मरम्मत की। जब वह पैर पकड़ने लगा तो छोड़ा। इस अवस्था में भी ऐसी मुस्तैदी उनमें थी। उस दिन से वह अपना पिस्तौल लेकर बाहर निकलते थे।

× × ×

मेरे बड़े भैया लखनऊ में बहुत बीमार थे। बीमारी थी दमा। बुखार अलग से आता था बहुत कमजोर हो गये थे। कोई इलाज फायदा न करता था। मैंने हकीम जी से पूछकर उन्हें बुलवा लिया और हकीम

का इलाज शुरू कर दिया। महीने-डेढ़ महीने हकीम जी का इलाज हुआ बोतलों आसव और न जाने कितनी कितनी भस्म उन्होंने भैया को खिलाईं और भैया अच्छे हो गये। दवा के दामों के बारे में एकाध बार मुझसे भैया ने कहा। मैंने कहा वैसे मेरा ख्याल है कि वे कुछ लेंगे नहीं, पर अभी रहने दीजिए आखिर में ही पूछेंगे। कुछ सन्देह मुझे इस कारण था कि इनकी इतनी कीमती दवायें इतनी अधिक मात्रा में लेने का मैदान पड़ा था।

इलाज खतम हो चुका था, भैया अच्छे हो गये थे। हम लोग गर्मी की छुट्टी के लिये लखनऊ जा रहे थे, भैया ने कहा—'हकीम जी से दवा के दामों के विषय में पूछकर उनका हिसाब कर दिया जाय।'

मैंने कहा—'चलिये।'

बहुत साहस करके मैंने पूछा दादा 'भैया कहते हैं कि दवा का हिसाब जो कुछ हो मालूम हो जाय।'

हकीम जी ने वैसे ही हाथ जोड़कर कहा—'कुछ नहीं, बस आप अच्छे हो गये यही सबसे बड़ी कीमत है।'

मेरे दूसरी बार कहते ही उन्होंने तेवर बदल दिये—'देखो भाई, कुछ और बात करनी हो तो करो नहीं तो चुप बैठो।'

मेरा और कुछ कहने का साहस न हुआ। हम लोग चले आये। भैया को बहुत ही आश्चर्य था। लखनऊ में एक डाक्टर के यहाँ भैया की रोज की बैठक थी, पर उन्होंने दाम लेने में कभी संकोच से काम नहीं लिया था। भैया समझते थे कि इसमें कुछ मेरे व्यवहार कायम करने की कुशलता थी। हकीम जी की महत्ता को वे पूर्ण रूप से न समझ पाये थे।

× × ×

फिर मेरी बदली लखनऊ की हो गई और मैं हकीम जी की छत्र-छाया में न रह पाया, पर जब तब उनकी बातचीत उनकी कृपा उनकी याद दिलाती। बहुत दिनों बाद शुकुल जी अपने सम्बन्धी के यहाँ, किसी काम से जाना हुआ तो उनके दर्शनों के लिए पहुँचा। हकीम जी जैसे स्नेह से मिले, देखकर जिस प्रकार हृदय से खिल गये उसे किन शब्दों से प्रकट कर पाऊँगा।

बातचीत के दौरान में हकीम जी ने मेरी बच्ची को पूछा—'बेटी कैसी है?'

'दुबली रहती है कुछ न जाने क्यों,' मैंने कहा।

'आप उसे शहद दीजिये, रोटी के साथ, शर्बत बनाकर, दूध में यों-ही। ग्लूकोज वगैरह से बहुत अच्छा रहेगा।'

'बहुत अच्छा'—मैंने कहा।

'पर आपको अच्छा शहद लखनऊ में मिलेगा कहाँ?'—वह बोले।

'मिल जायगा'—मैंने कहा—'एकाध दूकाने हैं वहाँ।'

'मैं अभी आया।'—कहकर वे अन्दर चले गये और एक बोतल शहद ले आये।

बहुत दिनों बाद गया था, इसलिये मैं पूछ सका—'इसकी कीमत?'

'आपका स्नेह!' हकीम जी वैसे ही हाथ जोड़कर बोले।

× × ×

दूर से दूर होता चला जाता हूँ, पर हकीम जी का चित्र आँखों के सामने उतना ही स्पष्ट है। काहिली के कारण पत्र नहीं लिख पाता, पर जो कोई उस नगर से आता है उससे उनका हाल जरूर पूछता हूँ और

यह सुनकर कि वे अब भी उसी तरह टहलने जाते मरीजों को मुफ्त दवा देते और हँसते बोलते हैं, खुश होता हूँ। उनको देखने की मैं कामना करता हूँ यह भी कामना करता हूँ कि अभी बहुत दिन वे इसी तरह अपनी निस्पृहवृत्ति से पीड़ितों के कष्ट दूर किया करें। मेरा स्केच किसी विशेष अन्त पर न पहुँचने के कारण अधूरा ही रह जाय अथवा उसमें कोई कलात्मक त्रुटि रह जाय, इसका मुझे गम नहीं।

नर्तक

भोला महाराज का संगीतप्रेमियों में वैसा ही मान था जैसा टण्डन जी का असेम्बली में, उमर तो अभी उनकी पच्चीस-छब्बीस ही के लगभग थी, पर उनका गुण देखकर बड़े बड़े संगीत कलामर्मज्ञ दाँतों तले उँगली दबाते थे। ढाई ढाई सेर घुँघरू पैरों में बाँधकर भोला जिस समय नाचने खड़े होते तो बड़े बड़े तबलिये अपने उस्तादों की याद करते हुए डुग्गी और दाएँ पर हाथ रखे मुँह फैलाए बैठे रह जाते हैं। लहरा बजानेवालों के हाथ रह जाते। उनके नाच के एक टुकड़े की एकहरी लय लोगों की चौगुन और अठगुनी होती थी।

एक नाच ही नहीं, सरस्वती मैया की उन पर कुछ ऐसी कृपा थी कि वे जो काम करते उसमें कमाल करके दिखा देते। तबला बजाने में इतना मीठा बोलनेवाला बाँयाँ आज तक किसी का सुना ही नहीं गया था और ठुमरी, ठुमरी तो ऐसी लाजवाब गाते थे कि बस हद है। एक एक मिसरे में—तुम्हें लेके सांवरिया निकर चलिबै—रात रात बीत जाती और लोग दुनिया के झंझटों को बालाए ताक रख गाना सुनते रहते। जब वह भाव बताने लगते तो लोग भूल जाते कि निकल चलने को कहनेवाला 'पुरुष है, स्त्री नहीं। उन्हें बस ऐसा मालूम होता कि यौवन में मदमाती एक शोडषी अपने संवरिया से निकल चलने को भिन्न भिन्न प्रकार के भाव से कभी बिलकुल प्रेमरस में सराबोर होकर, कभी रूठकर, कभी खीझ व कभी भरा मान से कहती है। जिसकी तरफ भोला

अपना मुँह करके भाव बताने लगते उसे ऐसा मालूम होता कि वही उस नवयौवना का सँवरिया है।

उनके भाव-प्रदर्शन और नाच में ऐसी मनमोहकता थी कि जो देखता था वह पछताता था और जो न देखता था वह तो पछताता था ही, मनमोहने का यह गुण कला की दृष्टि से और सबको तो अच्छा लगता था ही, पर वेश्याओं को यही सबसे अधिक उपयोगी मालूम होता था। यही वजह थी कि जब से उनके बाप अन्नू महाराज मरे थे, उनके शागिर्दों में वेश्याओं की भारमार थी।

जिन अन्नू महाराज की कला का दसवाँ हिस्सा पाकर भोला ने यह कमाल-हासिल कर रखा था, उनका प्रताप कुछ ऐसा-वैसा न था। उनका नाच तो कला की उस हद तक पहुँच गया था कि उनके नाच के एक ही टुकड़े को याद करके उस पर रियाज करके लोग विदेशों में जाकर नाचते और दुनिया की सात आश्चर्यमयी वस्तुओं के बाद आठवीं समझे जाते थे। उनकी बनाई हुई और बन्दिश की हुई ठुमरियों की लयकारी ऐसी जबर्दस्त होती थी कि थोड़े दिन गवैयों में सब ठुमरियों के सीखे बिना गायन की शिक्षा अधूरी समझी जाती थी।

अन्नू महाराज के पुत्र होने की वजह से भी भोला का इतना सम्मान होता था कि जिस महफिल में भोला बैठे होते थे और कोई नाचता या तबला बजाता तो भोला के सामने बतौर इज्जत के घुँघरू और तबले की जोड़ी रख दी जाती थी।

अन्नू महाराज के हालाँकि दो और लड़के थे, मन्नू और छुन्ना और दोनों नाचने में भोला से किसी कदर कम न थे, पर लखनऊ की जनता को भोला जितना प्रिय था, उतना और कोई नहीं। इसकी वजह यह भी थी कि मन्नू और छुन्ना ने बाहर राजाओं के यहाँ नौकरी कर

ली थी और सैकड़ों रुपये के प्रस्ताव आने पर भी भोला ने बड़ी-बड़ी फिल्म-कम्पनियों की नौकरियों को ठोकर दे दी थी। वह सदा यही कहते थे—"भैया कोई चाहे कहीं जाय, हम तो लखनऊ से नहीं जायेंगे और कभी किसी की नौकरी नहीं करेंगे, हम तो लखनऊ के लोगों के चाकर हैं।"

हाँ तो इतने सब गुणों के होते हुए भी भोला की जो दिन-रात की वेश्याओं की संगत हो गई थी, उससे उनके मन पर एक बड़ा जबर्दस्त प्रभाव पड़ा था। वे स्त्रियों को मन बहलाने की सामग्री समझते थे और उनका कोई महत्त्व उनकी समझ में आता ही न था। फिर भी अब तक भोला का ब्याह न हुआ था और उन्हें इसकी कोई जरूरत भी महसूस न होती थी, लेकिन अन्नू महाराज के श्राद्ध पर अब की जब सब भाई इकट्ठा हुए तो मन्नू भैया और छुन्ना भैया भोला के पीछे पड़ गये कि वह ब्याह कर ले और आखिर को उन्हें राजी होना ही पड़ा।

× × ×

लेकिन सवाल यह था कि भोला को अपनी लड़की दे कौन? उसकी वेश्याओं की सोहबत व शराब पीने की ज्यादती से सभी वाकिफ थे।

अपने दोस्तों से नित्य-प्रति कहने पर और अखबार में विज्ञापन देने पर भी जब भोला के पास ब्याह का कोई प्रस्ताव न आया तो उन्हें अपनी बड़ी तौहीन मालूम हुई, यहाँ तक कि एक दिन तो बिना किसी से कुछ कहे-सुने घर में ताला लगाकर चल दिये।

× × ×

चिलचिलाती धूपवाली एक दुपहरी में तीन महीने बाद भोला के सूने

घर के सामने ताँगा आकर रुका तो आठ-दस रँगीली छबीली, शिक्षित अशिक्षित पड़ोसिनें, जिनमें से अधिकतर उनकी प्रेमिकाएँ बन चुकी थी अपने घर के दरवाजों पर निकलकर खड़ी हो गईं। देखा कि ताँगे परदा बँधा हुआ है और नीचे की तरफ बढ़िया सैन्डल में संगमरम को मात करनेवाले पैर झलक रहे हैं। दो एक जो जरा शोर थीं, बढ़कर ताँगे तक आईं फिर शर्माती हुई बहू का मुँह देखा अपने मुँह पर जैसे आप ही स्याही फिर गई। एक उसकी बड़ी-बड़ आँखों की ओर लक्ष्य करके बोली—"ये बैल की-सी आँखोंवाली कह से लाये हो?"

दूसरी ने उसके दुबले-पतले शरीर को देखकर कहा—"इ लक्खो बँदरिया को आजकल कभी अन्न का दाना मयस्सर हुआ कि नहीं?"

तीसरी ने बहुत गम्भीर मुद्रा बनाकर कहा—"महाराज तुमने अच्छा नहीं किया जो इसको ले आये, ये तो किसी राजे-महारा की राज रानी होने लायक थी।"

× × ×

यह सुनकर कि यूनिवर्सिटी के किसी नाच-गाने से शौक रखने वाले प्रोफेसर को अपनी लड़की के भोला महाराज के नाच प रीझ जाने के कारण उसका उनके साथ ब्याह कर देना पड़ा है औ वे उसे लेकर लखनऊ आ पहुँचे हैं, भोला महाराज के शागिर्द समा में खलबली मच गई।

थोड़ी ही देर में मोटर पर मोटर और ताँगे पर ताँगे आने शु हुए, पर दरवाजे की जञ्जीर अन्दर से बन्द थी और पुराना नौकर चिम्म रखवाली कर रहा था। न किसी को कुण्डी खटखटाने देता न आवा

लगाने। उसे इन जलमुँहियों से पहले से ही घृणा थी कि वे उसके गोद के खिलाए हुए मालिक को बुरे रास्ते पर ले जा रही थी और आज एक-एक को धुतकारकर वह अपने दिल की हविश मिटा रहा था, फिर भी कुछ लोग न माने और आवाज दे ही बैठे, हालांकि नतीजा कुछ हासिल न हुआ।

तीन महीने बाद पता नहीं अपनी नवीन पत्नी से मन भर जाने पर या खर्चे की तंगी से, भोला महाराज अपने घर के बाहर निकले और थोड़े ही दिनों में अपने घर से काफी दूरी पर एक कमरा लेकर अपने पुराने शागिर्दों की ट्रेनिंग शुरू कर दी।

जब भोला महाराज घर के बाहर निकले तो औरों ने अपने मतलब को साधने का मौका देखा। एक दिन दोपहर को मालिन ने कहा—"तुम भी बहू यहाँ कहाँ आ फँसी. तुम तो किसी महल की शोभा बढ़ाने लायक थी।"

'क्यों महल में क्या खास बात होती है.' अन्नपूर्णा ने पूछा।

"वहाँ अपना मालिक अपना तो रहता है" मालिन ने हाथ नचा-कर कहा।

अन्नपूर्णा ठट्ठा मारकर हँस पड़ी,—"ये एक ही कही।"

'मैं जो कहती हूँ बहू जी, मालिन जरा प्रभावशाली स्वर बनाकर बोली। 'यहाँ महाराज का तो यह हाल है कि दिन में उनके पास पचास रंडियाँ आयें तो थोड़ी और सौ आयें तो थोड़ी, तिस पर उनका काम यह है कि जिसको उन्होंने अपनी न बना लिया, जैसा उनके मुँह से सुनती आई हूँ: उसे पैर उठाना न बताया।'

अन्नपूर्णा जैसे आगबबूला हो गई। 'जायेगी यहाँ से या नहीं, उसने चिल्लाकर कहा।'

मालिन बोली—'मैं आपसे जो कहती हूँ बहू जी।'

'तब मैंने उसे दो धक्के दिए और घर से निकाल दिया।'

'क्यों तुम्हें विश्वास नहीं हुआ?'

'हें! मुझे क्यों विश्वास होने लगा।'

भोला महाराज कपड़े पहने एक नवेली को हृदय से लगाकर उसके हृदय में नृत्य के भावों का संचार कराने जा रहे थे, अन्नपूर्णा की बात सुनकर उनके हृदय ने उन पर लानत भेजी—इस गृह-लक्ष्मी के प्रति ये विश्वासघात। उन्होंने कहा—"हटाओ अब कौन घूमने जाय। बहुत रात हुई।"

कई महीनों बाद अन्नपूर्णा के आज भाग जगे।

× × ×

तुम्हारी तो बेटा बात ही क्या है, आखिर अन्नू महाराज के बेटे हो; मुझे जरा अपने दो एक शागिर्दों का नाच दिखला दो। पोपले मुँह से भोला महाराज के पिता के एक पुराने दोस्त ने कहा।

भोला महाराज ने चिम्मन को बुलाकर कहा—"देखो जा के जो जो गाना और नाच सीखने आते हैं सबके यहाँ कह आ कि कल महाराज के यहाँ रात को महफिल है जरूर जरूर आवें। देख चावलवाली गली की बाई को और म्यूजिक कालेज के जो लड़के ठुमरी सीखने आते हैं उनको भी, भूलना न किसी को।"

× × ×

आठ का टाइम दिया गया था, नौ बजने में दस मिनट की देर थी, दर्शकों के मारे तिल रखने की कहीं जगह न थी, पर एक भी गाने-नाचनेवाले का पता न था। भोला महाराज को मालूम हो रहा था जैसे कोई गले पर धीरे-धीरे छुरी फेर रहा हो। ताँगे के रुकने की आवाज आई, भोला महाराज लपककर बाहर आये समझे कोई गाने-

वाली आई है पर था चिम्मन। बोला—"महाराज बेनजीर और मुल्तानियाँ ने कहा कि आज शुब्बेरात है हमें फातिहा पढ़ने जाना है, हम न आ सकेंगी। श्यामा बोली मेरे सिर में चक्कर आ रहे हैं। पन्ना ने कहा मेरे पेट में दर्द है......।"

"आज सबको मौत आ गई।" भोला महाराज ने दाँत पीसकर कहा—"और ठुमरी सीखनेवाले ?"

"गवैयों के तो भइया नखरे बखाने ही हैं, शा साहब ने कहा मेरे तो १०२ डिग्री बुखार चढ़ा है, चौधरी बोला, मेरे तो आज इतवार का व्रत है यूँ मैं किसी काबिल नहीं हूँ, महमूद बोला मेरे चचा के लड़के की आज मौत हो गई है।"

"भाड़ में जाने दो सालों को। अच्छा देख तू राय साहब के यहाँ चला जा और कहना मेरी इज्जत जा रही है, मोहनी को भेज दें। जो कुछ जैसा उसे आता है वही सही, मैं अकेला तो न रह जाऊँगा। हाँ जा फुर्ती करना।"

'मरीजे इश्क में दम का शुमार बाकी है' के मधुर बोल भोला महाराज के कण्ठ से निकलकर लोगों पर डोरे डालने लगे। कभी कोई कामिनी अपने इश्क में मरते हुए किसी आशिक के दर पर खुद आकर पूछती है क्या मरीजे इश्क में दम का शुमार बाकी है ? कभी मरीज को तड़पते देखकर उसके सुहृद उसकी स्थिति में तरस खाकर, उसके मर जाने को ही अच्छा समझकर कहते हैं अभी तो—मरीजे इश्क में दम का शुमार बाकी है। कभी कोई मुब्तिलाए इश्क उसके अब तक न मरने पर ताज्जुब करके कहता है—'क्या मरीजे इश्क में अभी तक दम का शुमार बाकी है। कभी कोई पत्थर के से दिलवाली माशूक अपने आशिक के प्रेम पर शक करती हुई और उसके मर जाने की

ने अपने संगमरमर के से ढले हुए हाथ बढ़ाये, भोला महाराज ने दौड़कर उसे अपने अंक में भर लिया। उनके मस्तिष्क में भावों का उस स्थिति तक परिपाक हो गया था, जहाँ रस का संचरण होता है और मनुष्य दुनिया की परिस्थिति को भूलकर उसी रस में सराबोर हो जाता है। वे जनता की उपस्थिति को भूलकर अन्नपूर्णा के कृष्ण बन गये।

मिस्टर भूरे

यथा नाम तथा गुणवाली उक्ति प्रचलित तो बहुत है; परन्तु उसके उदाहरण बहुत कम दिखाई देते हैं। 'सुन्दर' की संज्ञा पानेवाले महोदय आपको अकसर तारकोल को चुनौती देनेवाले, चेचक के दाग-वाले और सब प्रकार से बदशकल दिखाई देंगे। जिन्हें कमलनयन नाम से पुकारा जाता है, उनकी आँखें चुंधी और बहुत सूक्ष्म होंगी। फिर भी मिस्टर भूरे पर यह उक्ति पूर्णतः चरितार्थ होती थी; उनका नाम भूरे था और वर्ण भी भूरा। यह बात उनके शरीर तक सीमित न रह गई थी। उनके सिर के ही नहीं, मूँछों और भौंहों तक के बाल भूरे थे जो उनके रूप को बड़ी भव्यता प्रदान करते थे। ईश्वरीय देन और मानवीय आकांक्षाओं का ऐसा सहयोग जरा कम ही दिखलाई पड़ता है।

दुर्बलता अथवा मांसविहीनता का उदाहरण मिस्टर भूरे इस मात्रा में थे कि यदि उनके शरीर पर के समस्त मांस को एकत्र किया जाता तो इतनी कोशिश के बाद चन्द छटाँक गोश्त ही हाथ लगता। रास्ते में जब वे निकलते तो लोग ठिठककर देखने लगते। उन्हें शंका होती कि कोई मुर्दा कब्र में से कोट-पतलून पहनकर निकल भागा है। कपड़ा उनके बदन पर ऐसे खिलते मालूम होते कि किसी डण्डे पर लटका दिये गये हैं।

स्वास्थ्य की दरिद्रता से आप यह न समझ लें कि मिस्टर भूरे ज्ञान-दरिद्र भी थे। इन्होंने प्रथम श्रेणी में विज्ञान की सर्वश्रेष्ठ डिग्री ली थी और

एक स्कूल में विज्ञान के अध्यापक थे। स्वास्थ्य की कमजोरी का प्रभाव उनकी बुद्धि की तीव्रता पर तो न पड़ा था, पर उसने उनके दिमागी सन्तुलन को अव्यवस्थित नहीं-किया था, यह भी नहीं कहा जा सकता। तर्क उनकी हाबी थी। विषय पर बहस करने लगते, बाल की खाल निकालना तो बात ही क्या है; जब तक उसका सम्पूर्ण क्रिया-कर्म करके तेरही और वर्षी भी न कर लेते पीछा न छोड़ते थे। बहस करनेवाला गरीब भी उनकी तर्क की तलवार के नीचे बलि का बकरा बन जाता। लोगों को जब जरा मनोरंजन की आवश्यकता प्रतीत होती उन्हें छेड़ देते और फिर वे चाभी भरी हुई मोटर की तरह इधर से उधर दौड़ने और टक्करें लगाने लगते। कमजोरी कहिये या सहजोरी—उनके इस गुण के कारण स्कूल के मास्टर ही नहीं, लड़के तक उनसे काफी दिलचस्पी लेते रहते थे। लड़कों को जिस दिन क्लास में पढ़ना न होता—मास्टर साहब लिटमस पर तेजाब का प्रभाव दिखलाते होते, वे एक साथ चिल्ला पड़ते—'जादू है जादू—वन्स मोर'। मास्टर साहब एक कदम आपे से बाहर हो जाते, उन्हें क्लास से निकल जाने को कहते और उनके न निकलने पर खुद ही क्लास से चले जाते। लड़के उस दिन कमरा बन्द करके शेर सुनाते या सिनेमा के गाने गाते। संक्षेप में वे सबका खिलौना थे और जिस दिन वे स्कूल न आते, मालूम होता कोई नहीं आया है।

इन सब बातों के होते हुए भी मिस्टर भूरे दिल के बुरे आदमी न थे। अनुचित बात उन्हें अवश्य पसन्द न थी। न वे किसी से अनुचित लाभ उठाते न किसी को अपने से उठाने देते; फिर भी वे किसी का अहित न चाहते थे।

× × ×

रात का समय था, लगभग एक बजा होगा, घोर जाड़े के दिन थे। मिस्टर भूरे अपने परिवार सहित घोर निद्रा में निमग्न थे कि किसी ने

बड़े जोर से कुण्डी खटखटाई: रात के सन्नाटे में वह आवाज चारों तरफ गूँज गई। मिस्टर भूरे ने ऊपर की खिड़की से ही पूछा—'कौन है?'

उत्तर मिला—'नीचे आइये।' साथ ही दिखलाई पड़ा कि कोई सज्जन ताँगे से अपना सामान उतार रहे हैं।

नीचे जाकर देखा—एक वयोवृद्ध सज्जन दरवाजे पर एक सात-आठ बरस के बालक के साथ खड़े हैं। सामान उनका उतरा हुआ रखा है और ताँगा जा चुका है। मिस्टर भूरे ने लालटेन को इस प्रकार उठाया कि आगन्तुक का चेहरा उन्हें दिखलाई पड़े, पर देखने पर भी उनकी समझ में कुछ न आया। सज्जनतावश उन्होंने कहा—'आइये।'

वृद्ध सज्जन तत्परता से सामान उठाने लगे। मिस्टर भूरे ने उनकी सहायता करना अपना कर्तव्य समझा।

वृद्ध ने कहा—'बेटा, तुमने मुझे पहचान तो अवश्य लिया होगा।' न पहचानते हुए भी भूरे से यह अशिष्टता न हो सकी कि साफ-साफ कह दें कि वे उन्हें नहीं पहचान सके, इसलिए उन्होंने सहमतिसूचक सिर हिला दिया।

हाँ, वही तो मैंने कहा, भला ऐसा थोड़े ही हो सकता है कि अपने पिता के इतने घनिष्ट मित्र बोराटे को तुम न पहचानो। बचपन से ही तुम बड़े होनहार और सज्जन मालूम होते थे। क्यों बेटा, तुम्हें याद तो होगा, मैं तुम्हारे पिता के पास अकसर आया करता था।

'जी हाँ, जी हाँ'—मिस्टर भूरे को कहना पड़ा। यद्यपि बहुत स्मरण करने पर उन्हें ऐसी ही याद आती थी कि एकाध बार शायद इन सज्जन को देखा है।

'तुम्हारे पिता भी कितने सज्जन आदमी थे'—बोराटे जी बोले—

'उनकी तारीफ नहीं हो सकती। और तुम ठीक उन्हीं को पड़े हो। तुम्हारे पिता जी का और हमारा कितना स्नेह था तथा तुम लायक बेटे हो कि उसे निभा रहे हो। मैं संकट में पड़ गया था बेटा, नौकरी अनायास ही छूट गई थी। मुझे चारों तरफ अंधकार दिखलाई पड़ने लगा, समझ में ही नहीं आता था कि कहाँ जाऊँ, क्या करूँ। तब तक मुझे खयाल आया—भाई शंकरलाल (भूरे के पिता) के पुत्र के होते हुए मुझे क्या कष्ट हो सकता है ? यदि आज भाई जी मौजूद होते तो मेरे लिए चिन्ता की क्या आवश्यकता थी ? वे चाहे आधा पेट खाते, पर मुझे भर पेट खिलाते। मैंने सोचा गुजरे का क्या अफसोस, वे नहीं हैं तो उनका लड़का तो है। लाख नालायक होगा फिर भी ऐसा थोड़े ही होगा कि अपने पिता के मित्र को दो रोटी न दे सके। मेरी रोटी का प्रश्न तो इतना मुख्य न था, जहाँ कहीं पड़ा रहता दो रोटी कोई भी डाल देता। फिर मुझे अब कौन अधिक दिन जीना है जो कोई मुझसे ऊबेगा। सवाल तो इस लड़के की जिन्दगी बनाने का था। इसीलिए मैं तुम्हारे पास आया। मैंने सोचा, तुम मास्टर हो, इतने लड़कों की जिन्दगी सुधारते हो, इसे भी राह पर लगा दोगे तो यह भी आदमी बन जायगा।'

अब मिस्टर भूरे का माथा ठनका। अरे! यह बुढ़ऊ तो काफी आगे तक की सोच कर आये हैं। इनके मरने में बहुत दिन नहीं हैं, इसलिए ये तो जब तक मरेंगे नहीं तब तक टरेंगे नहीं; पर इनके मर जाने पर पीछा छूट जाय सो बात नहीं, मरते-मरते बालि सुग्रीव के मार्ग में काँटा अंगद को बना ही जायगा।

यह सब बातचीत बैठक में ही हो रही थी। उन्होंने बोराटे जी से कहा—'चाची जी, आप अपना बिस्तरा यहीं खोल दीजिए, यदि और

किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो बतलाइये। वरना मैं चलूँ, नहीं तो आपको आराम करने में देर होगी।'

चाचा जी के सम्बोधन से गद्‌गद हुए बोराटे जी बोले—'खैर मेरी तो कोई बात नहीं बेटा, मुझे कौन दफ्तर जाना है, दोपहर में सो लूँगा, पर तुम्हें कष्ट होगा। तुमसे संकोच तो करना नहीं है बेटा, अपने घर में कोई संकोच करता है? तुम जानते ही हो मैं बाजार की कोई चीज खाता नहीं रहा हूँ। इस कारण सवेरे से हम लोगों ने कुछ खाया-पिया नहीं है। मेरी तो कोई बात नहीं, आवश्यकता पड़ने पर एकाध रोज भूखा रह सकता हूँ, पर इस लड़के को कुछ खिला दो तो अच्छा है।'

मन में यह सोचते हुए कि वास्तव में यह सज्जन संकोच को अपने से काफी दूर रखते हैं, मिस्टर भूरे अन्दर गये। श्रीमती जी इस बात से काफी परेशान थीं कि कौन सी बला इस वक्त आ गई कि भूरे जी ने जाकर कहा—'क्यों भाई, घर में कुछ खाने को है?' इन लोगों के लिए चाहिये। बेचारों ने सवेरे से कुछ खाया नहीं है। मन में चाहे जितना आक्रोश हो, श्रीमती जी के सामने दया प्रकट करना ही उन्होंने उचित समझा, अन्यथा उनसे किसी तरह का कष्ट उठाने की आशा न की जा सकती थी।

'इस वक्त खायेंगे? निसाचर हैं क्या?'

'अरे भाई, जिसने सवेरे से नहीं खाया, उसे बिना खाये नींद ही क्या आयेगी। उसे तो जब मिलेगा तभी वह खायेगा।

'घर में क्या रखा है? जो कहो सो बना दूँ।'

'कुछ भी बना दो।'

श्रीमती जी ने रात को डेढ़ बजे अपने करम को रोते हुए हलवा बनाया। बोराटे जी ने खूब प्रशंसा करते हुए अपने पुत्र सहित श्रीमती

जी के परिश्रम को पूरी तरह सार्थक किया। मिस्टर भूरे को इस वक्त ही आभास हो गया कि वृद्ध पुरुष की खूराक अच्छी है और उनका लड़का भी होनहार है। इन लोगों के खा-पी लेने पर मिस्टर भूरे अन्दर चलने को हुए कि बोराटे जी ने कहा—बेटा, सुनो—बिना चारपाई के मुझे सोने की आदत नहीं है, नींद ही नहीं आती। एक चारपाई तुम्हें देनी पड़ेगी।

भूरे जी ने सोचा जब मेरी इच्छा-अनिच्छा का प्रश्न ही नहीं उठता, तब आवश्यक होने पर अवश्य ही देनी पड़ेगी। चारपाई भूरे जी के यहाँ दो थीं, एक पर वे सोते थे, दूसरी पर उनकी श्रीमती जी और बच्चा। उन्होंने अपनी वाली चारपाई लाकर डाल दी और सोने चले गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही उठने पर मिस्टर भूरे ने जाकर बोराटे जी से पूछा—'कहिये चाचा जी, रात को नींद खूब अच्छी तरह आई?'

'हाँ-हाँ बेटा, क्यों नहीं; यह तो अपना ही घर है। नींद तो आदमी को वहाँ नहीं आती जहाँ नई जगह होती है, जहाँ वह अपना घर महसूस नहीं करता है। जब मुझे यहाँ रहना ही है तो नींद न आने से कैसे काम चलेगा?'

मिस्टर भूरे ने मन में सोचा कि वृद्ध महोदय कोई भी अवसर अपनापा प्रकट करने का और भावी कार्यक्रम बतलाने का हाथ से जाने नहीं देते हैं तो वे कुछ चिन्तित हुए, पर सोचा कि उनके इतने अटल विश्वास के पहाड़ को एकदम से ढहा देना ठीक नहीं है, धीरे-धीरे देखा जायगा।

बोराटे जी ने पहला काम यह किया कि घर का निरीक्षण किया और

बोले—'ठीक है. इस घर में मुझे कोई असुविधा न होगी। मैं यहाँ आजीवन बड़े मजे से रह सकता हूँ।' यद्यपि घर काफी छोटा था, और उसमें मिस्टर भूरे का निर्वाह भी बड़ी कठिनाई से हो पाता था: पर उनके लिए इन दामों में वह बुरा भी नहीं था। 'मुझे कौन बड़ी जगह चाहिए कमरे में पड़े रहना है, कोई बहुत जरूरत पड़ी तो अन्दर आये।' इसके साथ ही उन्होंने गृहिणी की प्रशंसा भी आरम्भ कर दी। श्रीमती जी फूलकर कुप्पा हो गईं। ऐसे सज्जन अतिथि की खातिर के लिए उन्होंने जलपान और भोजन में एकाध स्वादिष्ट चीजें और बनाने का निश्चय किया।

बोराटे जी ने घर के बड़े-बूढ़े का चार्ज ले लिया। दो-चार सुझाव भी पेश कर दिये। महरी पर वे काफी जोर से बिगड़ गये—कैसा गन्दा काम करती हो तुम, यह सब कूड़ा इधर छूट गया है।

बेचारे भूरे और उनकी पत्नी की बोटी-बोटी काँप गई, क्योंकि जमाना बड़ा खराब था। महरियों के मिजाज न मिलते थे। उन्हें यह डर लगा कि कहीं ऐसा न हो कि यह अल्टिमेटम दे दे और हाथ से बर्तन माँजने तथा पानी भरने की नौबत आये।

बोराटे जी ने उसी दिन से लाभदायक सिद्ध होने का प्रयत्न भी प्रारम्भ कर दिया। 'बेटा तुम आज चलकर मुझे सब बाजार वगैरह दिखला देना। मैं सौदा इत्यादि ले आया करूँगा।'

भूरे बोले—'अरे नहीं, इसकी क्या जरूरत है। मैं तो सब ले ही आता हूँ। आपको कष्ट करने की क्या आवश्यकता है।'

'नहीं बेटा, तुम समझते नहीं' बोराटे जी बोले—'उतनी देर में तुम एक ट्यूशन कर आओगे तो चार पैसे घर में आयेंगे। तुम मुझे यहाँ कुछ दिन रह लेने दो, देखो घर की दशा क्या से क्या कर देता हूँ।'

आता कि क्यों तुम्हारा खर्च पूरा नहीं पड़ता। इस बार तुम अपनी तनख्वाह मुझे लाकर दो। फिर देखो तुम, मैं उसमें से तुम्हें कुछ बचाकर न दूँ तो मेरा नाम बोराटे नहीं।

अब भूरे से सहन न हुआ। उन्होंने बिगड़कर कहा—'नहीं-नहीं, यह सब कुछ नहीं होगा। मुझे आपका विश्वास नहीं है। आपको यहाँ से जाना पड़ेगा।' मन में सोचा कि इस पर भी यदि यह दुष्ट न जाय तो महल्ले-पड़ोसवालों की मदद लेकर इसे गर्दन में हाथ देकर निकालना पड़ेगा।

'तो यह कहो कि तुम मुझे यहाँ से निकाल देना चाहते हो। इतनी देर से यह क्यों नहीं कहते? पहेलियाँ बुझा रहे हो।'

'कह तो मैं इतनी देर से भी यही रहा हूँ, पर आप समझें तब न?' बोराटे जी ने अपनी आँखों में आँसू भरकर कहा—'मैं स्वप्न में भी कैसे सोच सकता था कि भाई शंकरलाल का लड़का ऐसा नालायक निकल जायगा। हाय भाई शंकरलाल, तुम कहाँ हो?'

भूरे क्रुद्ध होकर बोले—'खैर, मैं नालायक ही सही। पिता जी के आप ऐसे कोई मित्र भी नहीं थे। आप उन्हें जानते अवश्य थे। वे खुद भी होते तो जितना मैंने आपके साथ किया है, उससे कुछ अधिक न करते।'

'क्यों मृतात्मा के विषय में ऐसा कहते हो? आज भाई शंकरलाल होते तो मुझे किस बात की चिन्ता थी?'

'खैर, वह तो अब हैं नहीं'—मिस्टर भूरे ने बड़ी रुखाई से कहा।

'तो क्या मुझे इसी वक्त घर से निकाल दोगे, जरा भी सोचने का समय न दोगे?'

'नहीं, आप सोच लीजिये'—कहकर भूरे अन्दर चले गये।

भूरे के अन्दर पहुँचते ही गणेश भी अन्दर आया। बोला, बाबू जी कहते हैं 'हम लोग रोटी न खायेंगे।'

गृहिणी ने कहा—अपने पिता जी से कहना, इस समय तो आप लोगों के लिए भोजन बन गया है। इस समय भोजन कर लें।

भोजन के समय एक आवाज देते ही बोराटे जी पुत्र सहित आ पहुँचे और उन्होंने सदैव की भाँति निःसंकोच होकर भोजन किया।

दूसरे दिन बोराटे जी से न किसी ने भोजन के लिए पूछा न उनका खुद ही कुछ साहस हुआ। जब मिस्टर भूरे खा-पीकर स्कूल चले गये, गृहिणी के भी कुल्ला करने की आवाज बाहर सुनाई दे गई तो बोराटे जी निराश हो गये। गणेश भूख के मारे अलग परेशान किये हुए था। वे बाजार गये। उन दिनों टमाटर चार-छः पैसे सेर मिल जाते थे। आधा सेर टमाटर ले आये और खाने लगे। गणेश ने एकाध टमाटर खाया पर यह सब उसे कुछ रुचा नहीं। वह वैसे ही चिल्लाता रहा। गृहिणी को दया आई, उन्होंने अन्दर बुलाकर उसे खिला दिया।

बोराटे जी ने एकाध दिन इसी तरह और निकाल दिया। उस दिन मिस्टर भूरे ने फिर उनसे पूछा—'अब तो आपने सोच लिया होगा?'

'तुम तो मेरे पीछे पड़ गये हो। मैं अभी चला जाता हूँ'—बहुत ही गरजकर बोराटे जी बोले और घर के बाहर हो गये।

थोड़ी देर में वे ताँगा ले आये और उस पर सामान रखते हुए बोले—मैं क्या समझता था......?'

'कि भाई शंकरलाल का लड़का ऐसा नालायक निकलेगा—'

भूरे के पड़ोसी मित्र ने वाक्य पूरा किया। वह सब वाकिया सुन चुका था।

बोराटे जी ने उसे घूरकर देखा।

ताँगेवाले ने पूछा—'कहाँ ले चलूँ बाबू जी?'

'किसी भी दक्षिणी के यहाँ'—बोराटे जी बोले।

ताँगा आगे बढ़ा। पड़ोसी ने शेर पढ़ा—'बहुत बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले!'

सजा

केन्टरबरी के नये आर्कविशप (पादरी) ने अपने पास पहले ही पहल धर्म-शिक्षा के लिये आये हुए दो युवकों से कहा—तुम्हें अपनी आत्मा को शुद्ध रखना होगा, यह कर लेने पर तुम जो कुछ भी करोगे, वह प्रभु ईसा की दया से सबसे उचित कार्य होगा और एक बार जब तुम यह समझ लो कि तुम उचित मार्ग पर चल रहे हो तो दुनिया की आपत्तियों व संसारी लोगों के रोड़े अटकाने के डर से तुम अपने मार्ग से कदापि विचलित न होओगे।

'और धर्म-पिता मेरे लिए?' उन दोनों में से सुन्दर और चमकते मुँहवाले युवक ने कहा।

'तुम्हारे लिए भी मेरा यही आदेश है' धर्म-पिता ने कोमल स्वर से कहा।

'अच्छा, विदा', कहकर दोनों युवक उस कोहरे से आच्छादित गिर्जे के बाहर प्रातःकाल के समय निकल आये।

'तुम्हें कहाँ जाना है?' उस सुन्दर मुखवाले युवक ने सभ्यता से पूछा।

'मैं तो बहुत दूर जाऊँगा, हंटिंगडनशायर तक"—उस पुष्ट अवयव और रोबीली आवाजवाले जवान ने अपने कण्ठ को सरस बनाते हुए कहा—'हम लोग तीन रोज तक कितने आनन्द से रहे हैं कि मेरा

मन तो होता है कि धर्म-शिक्षा का यह काल थोड़ा और बढ़ गया होता।'

'वास्तव में मैं भी यही कहनेवाला था। तुम यह बात मेरे मुँह से छीन ले गये, अच्छा सुनो।' अपने अंग-रक्षक के सुन सकने के ख्याल से उसने धीरे से कहा—'यह लिफाफा लो, इसे तुम उसी वक्त फाड़ना जब तुम पर कोई कष्ट पड़े। यह लिफाफा तुम्हें उस शख्स के पास पहुँचावेगा जो तुम्हारी कोई भी सेवा करने में अपना सौभाग्य समझेगा। अच्छा विदा, मैं चलता हूँ, अंग-रक्षक सतर्क हो रहा है।'

घोड़ागाड़ी आई और उस सुन्दर युवक व उसके अंग-रक्षक को लेकर चल दी। औरस वह लम्ब-तड़ंग युवक कोहरे के बीच में आँखें मलता हुआ, लम्बे-लम्बे डग भरता अपने मित्र के शील और स्वभाव के विषय में सोचता हुआ चला।

× × ×

आलिवर जब से हंटिंग्डनशायर लौटकर अपने पिता के कारबार में लगा है, सोते-जागते उन तीन दिनों की सुखद स्मृति उसके हृदय से नहीं उतरती। उस सदा मुस्कराते रहनेवाले युवक की एक-एक बात उसके मन में चक्कर काटा करती है। जब उसका पिता कोई काम बिगड़ जाने पर उसे डाँटता है और घर से निकाल देने की धमकी देता है तो उसका मन लिफाफा फाड़कर उसके सहारे अपने उस सुहृद के पास पहुँच जाने को होता है, जिसके प्रत्येक वाक्य में उसे शक्ति और वैभव का आभास मिलता था। परन्तु उसकी कष्टसहिष्णु और कार्यशील प्रकृति उसे यह करने से रोके रहती है और वह सोचता है कि उस लिफाफे का उपयोग वह किसी बहुत बड़ी कठिनाई के अवसर पर करेगा। इस प्रकार वह लिफाफा बाइबिल की पुस्तक में यत्नपूर्वक रक्खा ही रहता है।

× × ×

उन दिनों चार्ल्स प्रथम की निरंकुशता सीमा तक पहुँच गई थी और उसकी क्रूर कथाओं को सुनकर हंटिंगडनशायर के उस युवक ने अपने देशवासियों को इस आततायी से छुटकारा पाने का मार्ग बताते हुए अपने कस्बे में इतना जोरदार भाषण दे डाला कि १६२६ में पार्लियामेंट का सदस्य बनाकर लन्दन भेज दिया गया।

यही युवक आगे चलकर आलिवर क्रामवेल के नाम से प्रसिद्ध हुआ और पिटीशन आफ राइट व ग्रान्डरिमान्स्ट्रेन्स चार्ल्स के विरुद्ध उसने ही प्रयत्न करके पास करवाये। इन चार्ल्स की ताकत कम करने-वाली सूचियों के पास करवाने के समय उसने जो प्रभावशाली भाषण दिये, उन्हीं से लोगों को पता चल गया कि चार्ल्स को अब वास्तव में ऐसा शत्रु मिला है जो उसकी जड़ खोद फेंकेगा।

लोगों का यह अनुमान सत्य ही सिद्ध हुआ, क्योंकि १६४२ में घरेलू युद्ध शुरू हो जाने पर जब पार्लियामेण्ट एजहिल और न्यूबरी के युद्धों में चार्ल्स का कुछ भी न बिगाड़ सकी तब क्रामवेल अपनी विधि से मार्स्टन पूर के युद्ध में सम्मिलत हुआ और सारी रात में क्रामवेल ने चार्ल्स की सेना के लोगों का बड़ी संख्या में वध कर डाला। सन् १६४५ में नेजबी के युद्ध में क्रामवेल ने अपने वज्रवीरों की सहायता से राजा और राजपद दोनों का अन्त कर दिया। चार्ल्स गिरफ्तार हो गया पर उसकी चाल से स्काटलैण्डवासियों की सेना से पार्लियामेण्ट को टक्कर लेनी पड़ी, जिसमें क्रामवेल की बदौलत पार्लियामेण्ट की जीत हुई।

× × ×

सन् १६४६ की पहली जनवरी का दिन था। चार्ल्स प्रथम का अभियोग निश्चित करने के लिए आज न्यायालय बैठाया गया था। देशवासी बहुत बड़ी संख्या में इस मुकदमें की कार्यवाही देखने को न्यायालय में एकत्रित हुए। एक बहुत ही ऊँचे स्थान पर इस समय

के इँगलैण्ड का भाग्य-विधाता कामवेल शान से बैठा हुआ था। उसका प्रभावशाली व रोबीला मुँह तेज से दमक रहा था। लोग उसकी ओर इंगित करके कहते—"यही हमारा प्रिय नेता, राजसत्ता का शत्रु, कामवेल है।"

चार्ल्स ने स्निग्ध मुख और विकारहीन गम्भीरता धारण किये हुए न्यायालय में प्रवेश किया और दर्शकों में खलबली मच गई। लोग चार्ल्स के रक्त के प्यासे हो रहे थे, कोई कहता था—"इसे कुत्तों से नुचवा दो" कोई उसे जिन्दा जलाने या गड़वाने की राय देता था। न्यायाधीश के 'शान्त' कहते ही सब शान्त हो गया।

कटघरे में खड़े होकर चार्ल्स ने जैसे ही सामने की ओर दृष्टि डाली, उसकी कोई पुरानी स्मृति जाग्रत् हो गई। उसने सिपाही को बुलाकर पूछा—"यह चौड़ा-सा कालर लगाये पूर्व की ओर मुँह किये कौन बैठा है?"

"आप इन्हें नहीं जानते। ये न्यूमाडल के सेनापति कामवेल हैं।"

चार्ल्स ने कई बार देखा, सोचा, पर ठीक-ठीक याद न आया।

मुकदमे की कार्यवाही शुरू हुई और जज ने कहा—"बन्दी तुम्हारे ऊपर यह अभियोग लगाया जाता है कि तुमने देश के विरुद्ध अस्त्र ग्रहण करके इँगलैण्ड की जनता का अकारण ही इतना अधिक रक्तपात करवाया। क्या तुम्हें इस विषय में कुछ कहना है?"

चार्ल्स का दर्पमय मुख क्रोध से लाल हो गया, उसने कड़ककर कहा—"न्याय का यह नाट्य बन्द करो। तुमको मुझ पर अभियोग लगाने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। मेरा पद तुम्हारे पद से कहीं बढ़कर है।"

कान में आवाज पड़ते ही कामवेल चौंक उठा—'हैं! इसकी आवाज तो उस केन्टरबरी के गिर्जेवाले युवक से बहुत मिलती है।

क्या यह वही है ? वह न्यायालय से उठा, सीधा अपने निवास-स्थान पहुँचा और बाइबिल के ऊपर चढ़े कागज को खोलकर आज से ३५ साल पहले दिये हुए उस लिफाफे को निकाला। लिफाफे का रंग कुछ से कुछ हो गया था। दुनिया के सब रंगों को मारनेवाला मिट्टी का रंग उस पर चढ़ गया था। काँपते हाथों से उसने लिफाफा फाड़कर पढ़ा। कागज पर सुन्दर अलंकृत ढंग की लिखावट में लिखा था—चार्ल्स प्रथम, इँगलैण्ड का भारी शासक। 'तो यह वही है, जिसकी मधुर स्मृति मेरे हृदय में इतने दिन रही है, जिसके वे शब्द—कठिनाई के समय में सदा तुम्हारी मदद करने को तैयार रहूँगा—मेरे हृदय में स्फूर्ति पैदा करते रहे हैं। वही आज मेरे इतना सामर्थ्यवान् होते हुए भी फाँसी की सजा पानेवाला है, क्या मैं उसे इससे बरी नहीं करवा सकता ? क्या अपनी न्यू माडल सेना लेकर उसकी ओर मिल जाने पर कोई शक्ति उसे राज्य सिंहासन से वंचित कर सकती है ? लेकिन नहीं, यह भावुकता है, यह देशद्रोह है। उसने अपने स्वार्थ के वश होकर देशवासियों पर अत्याचार किया है और उसका दण्ड उसे मिलना चाहिए। न्याय यही कहता है।'

× × ×

घोर अँधेरी काली रात्रि थी। चर्चयार्ड के उस सुनसान भाग में शव-रक्षक फाँसी हुए चार्ल्स के शव की रक्षा कर रहा था। इसी समय लबादे से अपने शरीर को ढँके हुए एक व्यक्ति शव के नजदीक आकर खड़ा हो गया और रुँधे कण्ठ से बोला—'बन्धु, मैं तुम्हें प्यार करते हुए भी तुम्हारे लिए कुछ न कर सका। इसके लिए परमात्मा मुझे पूर्ण दण्ड दे। यह मेरी हार्दिक इच्छा है। इसकी मैं तुम्हारे शव पर कसम खाता हूँ। परमात्मा तुम्हारी आत्मा को शान्ति दे।'

× × ×

और वास्तव में क्रामवेल को उसका मनचाहा दण्ड मिला। प्रजातन्त्र के महान् रक्षक होने के बाद जब उसकी मृत्यु हुई और चार्ल्स द्वितीय का राज्य स्थापित हुआ तो पिता का प्रतिकार लेने के विचार से चार्ल्स द्वितीय ने उसके शव को खोदकर फाँसी पर लटकवाया। यही नहीं उसे जो इससे भी बड़ा दण्ड मिला है, वह यह है कि आज तक कोई यह नहीं जानता कि क्रामवेल और चार्ल्स के हृदय में एक दूसरे के प्रति इतने कोमल भाव थे और उनके होने पर भी क्रामवेल ने अपने कठोर कर्तव्य का इस तरह पालन किया था।

× × ×

एक दिन

अभी-अभी सोती हुई सृष्टि ने अँगड़ाई ली थी। सूर्य की किरण अपनी अभिनव स्वर्णिम आभा में एक-एक किरण को रंजित करती हुई जाग्रति का सन्देश दे रही थी। सब ओर जीवन के चिन्ह प्रकट हो रहे थे। रायबहादुर साहब ने अभी आँखें मलते हुए जमुहाई ली ही थी कि नौकरानी दौड़ती हुई आई। 'सरकार को बधाई, मैं सोने का हार लूँगी, बताये देती हूँ। भैया हुआ है। मैंने सबसे पहले खबर दी है। मेरा हक है! जाने कितने दिन से आशा लगाये हुए थे कि यह दिन आवे और हम लोग अपनी सब माँगें पूरी कर लें।'

सेठ जी का रोम-रोम जैसे हँस पड़ा। प्रसन्नता फूटी-सी पड़ती थी। नौकरानी से हँसकर बोले—'अच्छा-अच्छा, सुन लिया। चाय भी लावेगी, कि खुशी के मारे ऐसी बावली हो गई कि काम भी न करेगी।'

'अब आज भी खुश न होऊँगी'—कहकर बल खाती हुई नौकरानी चाय लेने चल दी।

सेठ जी के मुख से निकला—'आज का दिन भी कैसा सुखद है।'

रायबहादुर दयाकृष्ण सेठ शहर के रईस लोगों में से हैं। सरकार के अफसरों से उनका इतना रसूक है कि एक महीने में जाने कितने डिनर, लंच, ऐटहोम और ड्रिंकपार्टियाँ देते हैं। यही कारण है कि

सरकारी इमारतों के जितने ठेके हैं सब सेठ जी के ही नाम छुटते हैं और रायबहादुरी का खिताब भी मिल गया है। लक्ष्मी जैसे मचल उठी है कि मैं अब पूर्ण अंगों से यहीं बस जाऊँगी। कोई ऐसा सुख नहीं जो सेठ जी को प्राप्त न हो। अब तक यदि कोई कमी थी तो यही कि उनके कोई उत्तराधिकारी न था। पहला ब्याह हुआ। उससे कोई बच्चा न हुआ तो वह अपने मायके यह कहकर भेज दी गई कि बड़ी चिड़चिड़ी है। हमारी उससे नहीं पटती। दूसरा ब्याह हुआ, बच्चा उससे भी न हुआ तो उसके मायकेवाले बुलाये गये और कहा गया 'इसको ले जाकर इसका इलाज कराओ।'

बहू के भाई वकील थे और पहली पत्नीवाली घटना से परिचित थे। बोले—'जिसकी बलाय उसके सिर, मैं क्यों इलाज करने को ले जाऊँ। आप यहाँ रखकर चाहे इलाज कराइये; चाहे जहर दिलवा दीजिये। यह बात और है कि मेरी बहन के इलाज के लिये आपके यहाँ रुपये की कमी हो, तो मैं मदद के लिये हाजिर हूँ। बोलिये कितना रुपया दे जाऊँ?'

सेठ जी समझ गये कि यह करें से पाला पड़ा है, बोले आपकी कृपा से इसकी कमी नहीं है। मैंने तो इसलिए कहा था कि यहाँ मैं काम में फँसा रहता हूँ दौड़-धूप और देख-भाल नहीं हो पाती है। आपके यहाँ इसकी सुविधा रहती है।

'अजी कहाँ, मैं तो अकेला आदमी अपने काम ही से छुट्टी नहीं पाता। आपके यहाँ नौकर-चाकर तो हैं। मेरे यहाँ तो यह हाल है कि बच्चे बीमार होते हैं तो घरवाली उन्हें लेकर अस्पताल जाती है और मैं नहीं जा पाता। अच्छा अब चलता हूँ, गुस्ताखी माफ कीजियेगा।'

सेठ जी ने दूसरी पत्नी के पद में परिवर्तन किया। मालकिन के पद से व परिवार की सदस्यता से वह दास-दासियों की समकक्ष बना दी गई। सेठ जी का तीसरा ब्याह हुआ और उसी पत्नी की बदौलत उन्हें पिता भी बनने का सौभाग्य आज प्राप्त हुआ। इतने दिनों की लगी हुई आस आज पूरी हुई फिर वे क्यों प्रसन्न न होते? क्यों न, उनके लिये आज का दिन सुखद होना!

नौकरानी चाय का ट्रे लिये हुए आई और बोली—सरकार गोल कमरे में बहुत से लोग बैठे हैं, खुशखबरी सुनकर बधाई देने आये हैं। कहते हैं खाली हाथ न आयें, मिठाई लेकर अन्दर से निकलें।

सेठ जी हँसे 'अच्छा देख, चिम्मन को भेजकर रामभंडार से एक मन भर मिठाई मँगवा ले और रामप्रसाद से कह—इम्पीरियल होटल से कुछ बैरों को बुला लावे, अँगरेजी इन्तजाम भी करना होगा। खबर पाते ही साहब लोग आयेंगे तो क्या वे खाली जायेंगे या खोये की गुझियाँ खायेंगे। समझी?

जी हाँ—कहती हुई नौकरानी नौकरों को बताने चली गई और सेठ जी चाय पीकर गुसलखाने में चले गये।

दरवाजे पर बैन्ड बज रहा था, बन्दूकें छूट रही थीं, खुशी लोटी-लोटी घूम रही थी। सेठ जी ड्राइंग रूम में पहुँचे तो बधाई देनेवालों की जैसे भीड़ सी उमड़ पड़ी। सबकी जैसी बाछें खिली पड़ती थीं, कहकहे लग रहे थे। फिर मिठाइयों का आना शुरू हुआ। दोस्तों ने खूब लम्बे-लम्बे हाथ मारे। दिन भर यही हाल रहा इसके अलावा सेठ जी के गहरे दोस्त भी आये। जिनको गहरी छनवाने के वास्ते बोतलें ली गईं। जो वहाँ आता था प्रसन्नता की मूर्त्ति बना हुआ, हँसी से खिला हुआ।

घर के बाहर भी एक भीड़ एकट्ठी थी, उत्सुक और प्यारे नेत्रों

की जो आशा लगाये हुए थे कि सम्भव है इस आनन्दोत्सव की कुछ जूठन उन्हें भी मिल जावे और उनमें से अनेकों के उन पेटों को जिन्हें दो-दो तीन-तीन दिन से अन्न का दाना नहीं प्राप्त हुआ है, कुछ शान्ति मिल जाय।

रकाबियों से जूठन बटोरकर बाहर फेंकी गई। उस समय पेट की ज्वाला से त्रस्त उन अभागों में कैसा भीषण संग्राम छिड़ा, यह कहना कठिन है। लड़के ने माँ के हाथ से झपटकर छीन खाया, बाप बेटे को ढकेलकर आगे बढ़ गया। पेट की ज्वाला ने उनकी कर्तव्य ज्ञान-शक्ति और माया-मोह को दूर भगा दिया। कुछ कुत्ते भी वहाँ इकट्ठे हो गये थे जो उस जूठन को अपनी मौरूसी जायदाद सा समझकर उसके दावेदार बन रहे थे। अब कुत्तों और आदमियों में भी छिड़ गई। किसी नौकर को कुत्ते पर दया आ गई (मनुष्य पर नहीं) और उसने दो एक भिखारियों को कुत्तों से छीनने के अपराध में डन्डा जमाया, पर वहाँ आत्माभिमान या आत्मगौरव का सवाल तो उठता नहीं था कि वे एक बार मार खाकर वहाँ से हट जावें। पेट के लिए वह संग्राम निरन्तर जारी रहा।

और कोठी में वैसी ही सुन्दर ध्वनि से बैन्ड बज रहा था, शराब की बोतलें खुल रही थीं और इस पर बहस हो रही थी कि आज के आनन्द को स्वर्गोपम करने के लिए किस कोकिलबयनी अप्सरा को बुला भेजा जाय।

बाहर मोटर के रुकने की आवाज आई। सेठ जी स्वागत के लिए लपके हुए आये। रानी साहब आई थीं, मोटर के नीचे कदम रखते ही सुगन्ध आस-पास फैल गई। कैसा अद्वितीय सौन्दर्य था, कैसी अनुपम वेश-भूषा थी, आँख न ठहरती थी। उतरते ही रानी साहब की दृष्टि उन भूखे

सैनिकों पर पड़ी जो युद्ध में लगे हुए थे। रानी साहब ने नाक सिकोड़ ली। 'कैसे गन्दे'—उनके मुँह से निकला।

सेठ जी गरजे—'चिम्मन!'

'जी सरकार!'

'हटाओ तो इन बदमाशों को फाटक पर से, गन्दगी फैलाये हुये हैं।' और वे बदमाश उसी वक्त वहाँ से हटा दिये गये। जूठन की मिठाई के टुकड़ों पर अब कुत्तों का एकछत्र साम्राज्य स्थापित हो गया।

रानी साहब के आते ही वातावरण कुछ और सुन्दर रंगों से भर गया, खुशी का एक तूफ़ान सा आया। इसी समय बाहर से आवाज़ आई—'हाय सरकार, हमें उबार लेव!'

सारा मजा किरकिरा हो गया। सेठ जी गरजे—'अबे रामप्रसाद!'

'हाँ सरकार!'

'यह कौन चिल्ला रही है? खुशी के वक्त में असगुन कर रही है।'

'हजूर के खिदमतगार बुद्धू की घरवाली है, कहती है बुद्धू की हालत बहुत खराब है कुछ रुपया मिल जाय तो किसी अच्छे डाक्टर को दिखला दे।'

'और तू उसकी सिफारिश लेकर आया है, क्यों बे?'

'नहीं तो सरकार'—रामप्रसाद सिटपिटा गया।

'यहाँ हराम का रुपया आता है न, जो उठा के दे दिया जाय। हालत बहुत खराब है तो मैं क्या करूँ? बुद्धू कोई बिला तनखाह यहाँ काम करता था जो माँगने चल दी। भगा उसको यहाँ से नहीं तो तेरी भी खबर लूँगा और वह जो अब चीखी तो मारे हन्टरों के खाल खींच लूँगा। भगा यहाँ से, भगा।'

और वह आमोद-प्रमोद अविराम गति से चल पड़ा।

किस्मत की मारी कल्लू की घरवाली रधिया सेठ जी के यहाँ से भी निराश होकर लौटी तो घर की ओर उसके पैर न पड़ते थे। घर में उसका जीवन-धन जिसके साथ उसने अपना गत जीवन सुखों-दुखों के बीच से गुजारा था, मृत्यु-शय्या पर पड़ा हुआ था और वह उसके लिए कुछ भी न कर सकती थी। वह सोचती थी—'आह यह वही तो सेठ हैं जिसकी नौकरी में मेरे पति ने अपनी सारी उम्र गुजार दी। दंगे में जिसके बचाने के वास्ते वह स्वामिभक्त सेवक अपनी जान पर खेल गया था।' वही सेठ उसकी इतनी बुरी दशा सुनकर कहता है—'यहाँ हराम का रुपया आता है जो उठा के दे दिया जाय।' आह, मनुष्य कितना कृतघ्न है तू और तू; अपने को सभ्य और सुसंस्कृत बताता है। तुझसे तो पशु भी अच्छे हैं। वे ऐसी आँखें फेर लेना नहीं जानते!'

रधिया सेठ जी के फाटक से निकली। जिन दुख, घृणा और क्रोध से जलती हुई आँखों से रधिया ने सेठ जी की उस विशाल अट्टालिका को देखा था, उसमें यदि कोई शक्ति होती तो अट्टालिका उसी क्षण भरभरा-कर गिर जाती, और सेठ जी का क्या क्या अनिष्ट न हो जाता। यह तो अच्छा है कि उस जगन्नियन्ता ने गरीबों की दृष्टि में कोई शक्ति ही नहीं दी। गरीब की हाय कलियुग में खाली ही जाती है।

रधिया ने घर की ओर पैर बढ़ाया—'आह न जाने उनकी क्या दशा होगी?' वह जल्दी चलने लगी, फिर सोचने लगी 'लेकिन और भी अगर खराब हालत हुई, तो मैं क्या करूँगी? डाक्टर होता तो कुछ दवाई ही देता, हालत सम्हल जाती। पर डाक्टर आवे तो कैसे आवे? बिना फीस तो वह आवेगा नहीं। सवेरे से चार दफे उसके दरवाजे पर जा चुकी हूँ, लेकिन उसके पास बिना फीसवालों की फरियाद सुनने का वक्त नहीं है। तब क्या हो? पैसा भी नहीं! बिना पैसे डाक्टर आने का

नहीं! और बिना डाक्टर पति!! आह!' इसके आगे वह न सोच सकती थी।

रास्ते में चलती-चलती वह खड़ी हो गई तब वह क्या करे, बिना डाक्टर के वह क्या करे? वह कुछ भी नहीं कर सकती। उसे डाक्टर किसी प्रकार नहीं मिल सकता। कोई साधन नहीं? हाँ, कोई साधन नहीं। तो कम से कम ऐसे समय में उसे अपने पति के निकट तो उपस्थित ही रहना चाहिये। अब उसे अनुभव हुआ 'इतना धीरे धीरे चलकर वह कितनी गलती कर रही थी। वह दौड़ने लगी, खूब तेजी से।

सूर्य भगवान् दिन भर का काम कर चुकनेवाले फाइलें समेटते हुए क्लर्क की तरह संसार के प्रत्येक कोने कोने से प्रकाश की एक एक किरण समेट रहे थे। लोहित आकाश के मुँह पर भी कालिमा पुतनेवाली थी। रधिया घर पहुँची तो उसके बच्चे दाढ़ें मार-मारकर रो रहे थे। उसकी छाती में हँथोड़े की चोटों की भाँति धड़-धड़ हुआ, उसने पति के मुख की ओर दृष्टि डाली; पथराई हुई आँखें देखी और वह उसके पैरों पर गिर पड़ी। लुट गया, उसका सब कुछ लुट गया। आज से वह निर्धन है, दुखिया है, अनाथ है। वह पति से कह देती थी यह चाहिये, और वह जहाँ से भी बनता था, लाकर उसकी इच्छा पूरी करता था। किसकी मजाल थी उसकी ओर टेढ़ी नजर से देख जाय, कच्चा ही चबा जाता। उस मिस्त्री ने एक दफे हँसी की थी तो जान छुड़ाना मुश्किल हो गया था बचा को। आज वही नहीं रहा, फिर उसके पास क्या है जिस पर वह गर्व करे।

कल उसके पति की दशा कितनी सुधरी हुई मालूम होती थी, उसने उससे कहा था—"मेरी तबीयत खराब होती है तो तू इतना घबरा क्यों जाती है? कुछ धीरज भी रखना चाहिये कि नहीं। जिसके आदमी नहीं रहते वह क्या जिन्दा ही नहीं रहती है।" उनकी इस बात पर वह बिगड़

गई थी—"ऐसी बातें लाख दफे कह दिया, मुँह से न निकाला करो। तब उसने कहा था—"अच्छा, बिगड़ मत; मैं कुछ नहीं कहता। तू घबराया मत कर, तेरी घबराहट देखकर मेरी तबीयत और भी खराब होने लगती है।"

और वह आज मीठी बातें कहाँ हैं? वह बातें करनेवाला कहाँ है? वह चिल्ला पड़ी—"आह भगवान्, कैसा मनहूस है आज का दिन।"

अब आया याद

लाला दुर्गाप्रसाद को दुनिया में यदि लगाव और प्रेम था तो अपनी एकलौती पुत्री कुमारी से। कुमारी के पालन-पोषण का भार भी दुर्भाग्य से उनके ही माथे आ पड़ा था—क्योंकि उनकी पत्नी उन्हें और उनकी बच्ची को जब वह दो ही वर्ष की थी, छोड़कर चल बसी थी। लाला दुर्गाप्रसाद ने अनेकों नौकर-नौकरानियाँ होते हुए भी लड़की की देख-रेख का काम किसी को न सौंपा। दूध पिलाने से लेकर नहलाने-धुलाने तक का काम सब वह अपने हाथों करते रहे।

अब लाला जी को दुनिया में एक ही अभिलाषा थी—वह यह कि अपनी पुत्री का ब्याह ऐसी धूमधाम से किया जाय कि दुनिया की कोई चीज देने को बाकी न रह जाय, जो कोई देखे कहे कि हाँ किसी ने ब्याह किया।

इसके लिए वे जी-जान से जुटे रहते। अभी कुमारी बच्ची ही थी, पर वे इलाके भर से उसके ब्याह के लिए सामान जुटाते रहते थे। जहाँ कहीं लाला जी जाते, जो फर्नीचर का सामान, कपड़ा गहना, बर्तन उन्हें अच्छा लगता, खरीदकर ले आते। सामान दिन पर दिन बढ़ता चला जाता था, यहाँ तक कि बेचारे नौकर उस सामान की सम्हाल और झाड़-पोंछ करते-करते परेशान थे और वे सोचा करते थे कि इतना सब सामान बिटिया की ससुराल पहुँचेगा तो कैसे! एक ओर लोग सामान

को देख-देख दाँतों तले उँगली दबाते थे, दूसरी ओर लाला जी का हाल यह था कि उनका जी ही न भरता। दिन पर दिन दुनिया की हर एक चीज़ इकट्ठा करने पर भी उन्हें कोई कमी महसूस होती रहती थी। उन्हें ऐसा मालूम होता था, जैसे वह कोई चीज भूल रहे हैं, कोई बड़ी आवश्यक चीज़, जिसे उन्हें अपनी बेटी के ब्याह में देना है और उन्हें याद नहीं आ रही है। वह इस ओर बड़े चिन्तित रहते थे, अक्सर घंटों वह यही सोचा करते कि वह आखिर है क्या चीज। कभी रात की रात यही सोचने में बिता देते; कभी कोई रियासत का काम करते और इसकी याद आ जाती; और वे उसे अलग रखकर सोचने लगते। अक्सर अपने सामान के कोठों को खुलवाकर देखते कि शायद किसी चीज़ को देखकर उस चीज की याद आ जाय। अक्सर बाहर भी घूमने जाया करते थे कि शायद उस चीज़ पर उनकी नज़र पड़ जाय, तो मन की खटक दूर हो जाय। जहाँ जाते वहीं से कुछ न कुछ खरीद लेते, मुश्किल यह थी कि जब तक वह कोई भी चीज़ पसन्द आने पर खरीद न लेते, तब तक यही भाव बना रहता कि शायद यही चीज़ हो; पर जब वह खरीद कर ले आते तो देखते कि मन की खटक जहाँ की तहाँ है।

अक्सर वे अपने इष्ट-मित्रों को भी ले जाकर यह सामान दिखलाते और पूछते कि इसमें कौन-सी चीज़ बाकी रह गई है? मित्रगण सामान देखकर चौंधिया जाते, कहते—"अब और क्या रह गया भाई!" यह सुनकर भी लाला जी का चेहरा कुम्हला जाता, उन्हें अपनी प्रशंसा करने-वाले की आवश्यकता न थी, बल्कि आवश्यकता थी उस व्यक्ति की जो यह चीज़ बताकर उनके मन की यह खटक दूर कर दे। वह कहते—"अच्छी बात है, कोई बड़ी भारी कमी नहीं रह गयी है, पर मेरा मन कहता

है।" उनकी यह बात सुनते-सुनते कुछ लोगों का तो ख्याल यह होने लगा था कि वे कुछ सनक गये हैं।

कुमारी कुछ बड़ी गम्भीर प्रकृति की लड़की थी। बचपन से ही एक गुरुता उसमें दिखलाई पड़ती थी। लड़कियों के खेलों और उनकी हँसी-ठट्ठे से भरी बातों, जिन्हें देखकर बुढ़ियाँ उन पर तिनके को डोलते देखकर हँसने का दोष लगाती हैं, उसे सहयोग देते कभी किसी ने न देखा। उसके मुख पर की व्यंगपूर्ण मुस्कराहट, जो सदैव वहाँ खेला करती थी, आनन्द अथवा उत्सव के समय में उस मुस्कराहट में तीव्रता आते अथवा हारी-बीमारी के समय में उसे मध्यम पड़ते न देखा जा सकता था। सदैव वह एकरूप दिखलाई पड़ती थी। लोगों के प्रत्येक कार्य को वह उसी व्यंगात्मक मुस्कराहट से देखती थी; यहाँ तक कि अपने पिता के सारे आयोजनों को भी वह उसी चिरस्थायी मुस्कराहट से देखती। कभी-कभी लालाजी बड़े उत्साह से कोई चीज उसके ब्याह के लिए लाते और उसको दिखलाने के लिए आते, पर जैसे ही उसके चेहरे पर नजर पड़ती, उनका सारा उत्साह फीका पड़ जाता। उस मुस्कराहट से उन्हें ऐसा मालूम होता जैसे कुमारी की दृष्टि में उस वस्तु का कोई महत्त्व नहीं है, और वे और भी व्याकुल होकर उस वस्तु के लिए छटपटाने लगते, जिसका कुमारी की दृष्टि में कुछ मूल्य हो, जिसे देखकर वह इस प्रकार न मुस्करा सके; पर उनकी यह साध कभी भी पूरी न होती।

तैयारी करते-करते वास्तव में कुमारी के ब्याह का समय आ पहुँचा। सम्बन्ध तय हो गया। यों तो न जाने कितने इस ब्याह के लिए मुँह बाये बैठे थे, क्योंकि लालाजी की तैयारी की धूम वर्षों से सुनी जा रही थी, पर लालाजी ने रियासत विजयपुर के ताल्लुकेदार साहब के बड़े लड़के को ही पसन्द किया।

ने सुना तो पागलों की तरह दौड़ पड़े, पर उसे इस प्रकार पड़े देखकर आँखें फैलाये देखते रह गये, फिर उसका सिर अपनी गोद में लेकर बैठ गये। इसी वक्त किसी वृद्ध ने कहा—"हुरमचन्द को बुलाओ, टिकटी बनवा कफ़न का इन्तजाम करो।"

लालाजी को ऐसा मालूम हुआ जैसे जिस चीज की खोज में थे, वह मिल गई।

एक अत्यन्त नीरव स्थान में, जहाँ सदैव पतझड़ का साम्राज्य रहता है, बसन्त जिधर आना भूल गया है, जहाँ फूल खिलने के पहले ही मुरझा जाते हैं, कुमारी की समाधि बनी हुई है और उस पर यह शेर लिखा हुआ है :—

अब आया याद ऐ आराम जाँ इस नामुरादी में।
कफ़न देना था भूले हम तुम्हें सामान शादी में॥